श्री गणेश स्मृति ग्रंथमाला ग्रथाङ्क २१

सौन्दर्य-दर्शन

(कहानी-संग्रह)

लेखक

शान्तिचन्द्र मेहता
एम ए एल एल बी एडवोकेट

प्रकाशक

श्री गणेश स्मृति ग्रन्थमाला, बीकानेर
(श्री अ० भा० साधुमार्गी जैन सघ द्वारा सचालित)
रांगडी मोहल्ला, बीकानेर (राजस्थान)

प्रकाशकीय

साहित्य की विविध विधाओं में 'कहानी' को सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त है। पाठक के समय को सरस बनाने के साथ ही कहानी उस पर स्थायी प्रभाव छोड़ती है। अत वह एक साथ ही रजक एव प्रेरणा-स्रोत भी है।

कहानी-साहित्य मे जैन-कथाओ का विशेष महत्त्व है। प्राचीनकाल से दृष्टात-स्वरूप अथवा स्वतत्र रूप से विविध कथाए लिखी जाती रही हैं और उनसे नैतिकता तथा आध्यात्मिकता के प्रचार-प्रसार मे अच्छा योग प्राप्त हुआ है।

'सौन्दर्य-दर्शन' मे श्री शातिचद्र जी मेहता की ११ कहानियो का सग्रह प्रकाशित किया गया है। इन कहानियो की कथावस्तु परम्परागत है परन्तु लेखक ने इन्हें नवीन शिल्प से मण्डित करके सोने में सुगध का काम कर दिया है।

मन्त्री
श्री अ० भा० सा० जैन सघ
बीकानेर (राज०)

अनुक्रमणिका

धधकते अंगारे

'क्या निर्दोष भिक्षा मिल सकेगी, माता ?'

देवकी रानी के सामने दो युवा मुनि खड़े थे। इतने स्वरूपवान, इतने तेजस्वी और इतने मनोरम कि उन्हें देखते ही अपार स्नेह उमड़ आये। तिस पर उन्होंने जो 'माता' कहा तो देवकी को ऐसे लगा कि सचमुच ही वे उसके ही पुत्र हो। स्नेह-विभोर हो उसने उन्हे वन्दन किया और हर्षित हो वह उन्हे पाकशाला के भीतर ले गई।

'मुनिवर, आपकी आकृतियो पर कितना रमणीय भाव है कि मैं आपके दर्शन कर स्नेहार्द्र हो गई हूँ'—देवकी ने अभ्यर्थना की।

'यह तुम्हारा संयम के प्रति स्नेह है, माता।'

पाकशाला में मोदक बने हुए थे व निर्दोष थे, जिन्हें देवकी ने मुनियो की आवश्यकतानुसार उनके पात्र में बहराए। मुनिद्वय आहार लेकर वापस लौट गये।

थोडी देर वाद फिर वैसे ही स्वरूपवान दो युवा मुनि आये और उन्होंने भी निर्दोष भिक्षा की याचना की। देवकी को कुछ शका हुई, वह यही समझी कि पहले वाले मुनि द्वय ही स्वाद के लोभ से मोदक ग्रहण करने फिर आ गये हैं। उसे मोदक का नही, मुनिधम का विचार आया, फि भी वह कुछ बोली नही। उसने उन्हें मोदक वहरा दिये

फिर वैसे ही स्वरूपवान दो युवा मुनि और आ तथा उन्होंने भी निर्दोष भिक्षा की याचना की। अव देवक रानी को अपने मन मे यह निश्चय-सा हो गया कि थोड़ थोड़ी देर वाद पहली बार आने वाले मुनिद्वय ही तीसर बार फिर मोदक लेने उसके यहाँ आ पहुँचे हैं।

देवकी स्वय नियमधारिणी थी व व्रत, नियम व परीक्षा के प्रति कठोर भी थी। साधु स्वादु बन जाये—य उसे सह्य नही हुआ। साधु जीने के लिये खाता है, उ खाने के लिये नहीं जीना चाहिये, फिर ऐसे तेजस्वी मुनिय से ऐसी भूल क्यो हो रही है? उस भूल को सुधारना देवक ने अपना कर्तव्य समझा।

उसने अति विनम्रतापूर्वक तीसरी बार आये मुनिद्व से पूछा—

'मुनिवर, क्या पूरी द्वारिका नगरी मे भिक्षा हेतु मे ही गृह ठीक लगा आपको?'

'यह तुमने क्यो पूछा, माता ? हम तुम्हें रानी समझ कर स्वादु भोजन लेने तुम्हारे यहाँ नही आये हैं। सभी छोट-बडे घरो मे हम घूमते हैं बिना भेदभाव के। आज चूकि नगरी के इस भाग मे भिक्षार्थ हम आये तो बीच मे हमने इस गृह को छोड देना उचित नही समझा और इसी कारण यहाँ भी चले आये हैं। आहार के स्वाद के प्रति हम कोई ममता नही रखते हैं, माता !'—मुनियो का उत्तर उससे भी अधिक विनम्र था।

'तो क्या मेरी आखें धोखा खा रही हैं जो मैं आप दोनो मुनियो को थोडी-थोडी देर मे इसी गृह मे आते हुए देख रही हूँ ? क्या आप दोनों अभी-अभी मे तीसरी बार मेरे गृह मे नही पधारे हैं ?'

'निश्चय ही तुम्हारी आखों ने धोखा खाया है, माता हम दोनो तो पहली ही बार आये हैं !'

मुनिद्वय का यह उत्तर सुनकर देवकी रानी भौंचक्की-सी रह गई। यह कैसा धोखा है ? क्या ये मुनि मोदक के लिये असत्य-भाषण भी कर सकते हैं ? किन्तु ऐसा सभव नही है कि भगवान् नेमिनाथ के सान्निध्य मे रहने वाले मुनि ऐसा कर सकें।

देवकी को विचारमग्न देख उन मुनिद्वय ने पूछा—

'क्या माता, हमारे जैसी ही आकृति वाले अन्य मुनि

भी पहले यहाँ आये थे ?'

'तो क्या ठीक आप जैसी आकृति वाले अन्य मुनि भी हैं ?'

'हाँ माता, हम एक-सी आकृति वाले छह भाई थे और छहों भाइयों ने भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण कर ली। दो दो मुनियों के हमारे तीन सिंघाड़े (समूह) भिक्षा लाने हेतु बनाये गये थे। आपके कहने से ऐसा पता चलता है कि संयोग से अलग-अलग तीनों सिंघाड़े आपके यहाँ भिक्षार्थ चले आये हैं।'

'मुनिवर, तब ठीक ऐसा ही हुआ है। मुझ पापिनी ने अपने मन में आपके साधु आचार के प्रति शंका पैदा की—उसके लिये आप मुझे क्षमा करें।'

'क्षमा का इसमें कोई प्रश्न नहीं। यह तो तुम्हारी जागरूकता है और ऐसी जागरूकता सद्गृहस्थों में होती है, तब साधु का जीवन अधिक पवित्र बना रहता है।'

'यौवन और रूप के मोह को छोड़कर आपने दीक्षा ग्रहण की—आप धन्य हैं और आपकी माता धन्य हैं जिन्होंने अपने छह-छह एक-से स्वरूपवान् लाडलों का मोह छोड़ दिया।'

'जीवन को ऊपर नहीं उठाया तो इस मानव-जीवन

का अर्थ ही क्या है, माता ?'—मुनियो ने सारभूत तत्त्व का उच्चारण किया।

मुनिद्वय का तीसरा सिंघाडा आहार लेकर चला गया किन्तु देवकी रानी का मातृहृदय स्नेह और विस्मय मे डूब गया। ऐसे भव्य छह-छह सुपुत्र किसके हैं—किस भाग्यवती माँ ने इन्हे अपनी गोदी मे खिलाया और कैसे उन्हें भगवान् की झोली मे डाल दिया—यह जानने के लिये उसका मन उतावला हो गया और यह जानने के लिये भी कि उन्हे देखकर उसका मातृहृदय क्यो सौ-सौ उछाले ले रहा है ?

वह भगवान् नेमिनाथ के पास पहुँच गई।

× × ×

'देवकी, तुम कुछ जानकारी पाने की जिज्ञासा लेकर उतावलेपन मे मेरे पास आई हो ?'

मन-मन की बात जानने वाले भगवान् ने देवकी को पहले ही पूछ लिया।

देवकी ने श्रद्धाभरे कंठ से कहा—

'हाँ प्रभु, आपसे कहाँ क्या छिपा रहता है ?'

'तो सुनो, ये छह मुनि तुम्हारे ही पुत्र हैं। ये कहाँ और किस ममतामयी माँ की गोद में बढे हुए, यह

वृत रहस्यमय है। भद्दिलपुर नगर में नाग गाथापति की धमपत्नी सुलसा ऐसी वध्या थी, जिसके मरी हुई सन्तानें होती थी किन्तु उसने हरिणगमेषी देव की आराधना कर सन्तान की कामना की। जिस पर देव ने अपनी माया से तुम्हारे पुत्रों को वहाँ पहुँचा दिया तथा उसके मरे हुए पुत्रों को तुम्हारे यहा, जो कस के हाथो मे पडे। इस तरह तुम अपने ही पुत्रों को नहीं जान सकी थी, देवकी!'

भगवान् से यह तथ्य सुनते ही देवकी हर्ष-विषाद के दोहरे आवेग मे झूल उठी। 'ये मेरे ही पुत्र हैं'—एक ओर ऐसे हर्ष ने उसकी स्नेहसिक्तता को विगलित कर दिया, तो दूसरी ओर विषाद के तेज अन्धड ने उसके मन को ऐसा क्षत विक्षत बना दिया कि वह दु ख में झूरती हुई बावली-सी बन गई।

वह अपने आवेग को न रोक सकी, सहसा उसके मु ह से निकल पडा, 'हा भगवन्! मैं कसी हतभागिनी हूँ जिसने सात पुत्रों को जन्म दिया किन्तु किसी की बाल-लीला न देख सकी। छह पुत्रो का तो ज्ञान ही आज हुआ और सातवें पुत्र कृष्ण को गोकुल मे यशोदा ने बडा किया। क्या यह मेरा भीषण दुर्भाग्य नहीं है कि मैं माँ बनकर भी माँ न हो सकी?'

'इसे दुर्भाग्य क्यों कहती हो देवकी, यह तो तुम्हारा

सौभाग्य है जो तुम्हारे पुत्र साधु बनकर स्व पर के कल्याण मे लगे हुए हैं। यह तुम्हारी ममता बोल रही है, सन्मति नही।' भगवान् ने देवकी को सच्ची सात्वना दी।

'आपके वचन सत्य हैं भगवन्, किन्तु माँ की ममता भी असत्य नही होती और जब माँ को ममता न मिले तो उसकी अवस्था कितनी विषम होती है ?' देवकी के नेत्रों से आसुओ की धारा बह रही थी।

कर्म सिद्धान्त का रहस्य समझाकर प्रभु ने उसे सात्वना दी और देवकी रानी 'जय हो, भगवन् !' कहती हुई झूमती, पुलकती अपने महल म लौट आई।

× × ×

कृष्ण महाराज ने अपने छोटे भाई के जन्म पर ऐसा उत्सव मनाया जैसा राज्य मे पहले कभी नही मनाया गया। देवकी रानी तो इतनी हर्षविभोर हो रही थी कि जैसे उसने अब सबकुछ पा लिया हो। वह अब घुटनो से चलना, तुतला तुतला कर बोलने आदि की असख्य बाल लीलाओ का आनन्द लेगी तो उसका मातृत्व सफल हो जायेगा।

नवजात शिशु का नाम गजसुकमाल (गजसुकुमार) रखा गया। कितने लाड-प्यार से गजसुकमाल का लालन-पालन और शिक्षा-सस्कार हुआ होगा—इसकी सहज ही

कल्पना की जा सकती है। वसुदेव के प्यार, देवकी के दुलार और कृष्ण की मगलकामनाओ के झूले मे गजसुकमाल बढे हुए एक शीलवान और तेजस्वी युवा के रूप में। माता पिता के ममत्व और भाई के स्नेह ने गजसुकमाल को गृहस्थी के बधनो मे बाध लेना चाहा कि वे अपने छहों भाइयों का अनुमरण न कर सकें।

'माता जी मैंने सोमिल ब्राह्मण की लडकी को स्वयं देखा है। सोमिल दीन-हीन ब्राह्मण अवश्य है किन्तु उसकी लडकी अति लाक्षणिक है एव अपने गजसुकमाल के लिये योग्य है। आप आज्ञा द तो वाग्दान कर दिया जाये'—कृष्ण ने देवकी रानी से पूछा।

'बेटा दीन-हीन, सम्पत्तिशाली होने का मेरे मन में कोई विचार नही है। मेरी पुत्रवधू सुशील, सुयोग्य और मेरे गजसुकमाल के मन भा जाये—ऐसी होनी चाहिये।'

'एसी ही है वह, मां!'

'तो तुम सम्बन्ध पक्का कर लो, पुत्र!' और आज्ञा देकर मां देवकी प्रसन्न हो उठी कि अब किसी भी तरह उनका गजसुकमाल उनकी गोद छोड कर सयम की गोद मे न जा सकेगा।

× × ×

'मैंने अभी-अभी सुना है पूज्य भाई साहब कि आप

ादल-बल भगवान् नेमिनाथ के दर्शन करने पधार रहे हैं।
्या आप अपने छोटे भाई को साथ नही ले चलेंगे ?'—
ाजसुकमाल ने कृष्ण महाराज से विनय सहित निवेदन किया।

'क्यो नही गजसुकमाल, क्यो नही ? तुम तो मेरे
रम आत्मीय हो। यदि तुम्हारी इच्छा है तो अवश्य चलो'—
कृष्ण का हृदय आशंकित हुआ किन्तु इनकार भी कैसे
किया जा सकता था। भगवान् के दर्शन जैसे पवित्र काम
के लिये इनकार करना तो और अधिक शका पैदा करना था।
कृष्ण ने गजसुकमाल को अपने ही हाथी पर अपने साथ बिठाया
और अपने साथ भगवान् के समवशरण मे ले गये।

भगवान की धर्मदेशना चल रही थी—

'हे भव्य जीवो, जीवन क्षणभगुर है और इसी
जीवन मे महान् सत्य का उद्घाटन करना है। आयुष्य तो
अल्प है किन्तु अनन्त आत्मिक-शक्ति को जो मृत्यु से पहले
प्रकट कर ले, वह धन्य हो जाता है

। 'अत समय मात्र का भी प्रमाद मत करो। बीता
।हुआ एक क्षण भी फिर लौट कर नही आयेगा। उसे व्यर्थ
।गवा दिया तो वह गया और अगर उसका सदुपयोग कर लिया
तो वह जीवन का आदर्श मोती बन जायेगा

'जीवन मे एक-एक क्षण का सदुपयोग करो, जाग-
रूक आत्माओ! अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एव अपरि-

ग्रह के महाव्रत धारण कर अपने से सलग्न पापमैल धो डालो विचार और आचार को निमल बना लो, देखो कैसा अखड, अमर और अनन्त आनन्द तुम्हें होता है ?'

शत-शत आत्माए इस उद्‌बोधन को सुन रही किन्तु सब की विचार-श्रेणियाँ एक नही थीं। आत्म-जागर की विविध अन्तर्धाराए सब ओर बह रही थी पर राजकुम गजसुकमाल की अन्तर्धारा इतने प्रबल वेग से प्रवाहित उठी कि उसने प्यार और दुलार का बन्धन, सुख ऐश्वय का व्यामोह तथा यौवन की भोग लिप्सा को एक बार मे टूक-टूक कर दिया। बाहर धमदेशना चलती र और अन्तर्मन मे गजसुकमाल के त्याग का रग गहरा हो चला गया।

ससार जितना भोग की धारा में सुख ढूढता उतना ही वह भटकता जाता है। सुख मृग-तृष्णा के मे बना रहता है, मिलता नही। किन्तु जो अपने जीवन त्याग की धारा मे बहा देता है, उससे जब सुखानुभव होता है तो वह त्याग के घनत्व के साथ प्रगाढ़ बनता जाता है। जब गजसुकमाल ने सुदृढ अभिलाषा से अप आपको त्याग की धारा में डाल दिया तो भला फिर कौन शक्ति उन्हें त्यागी बनने से रोक सकती थी ?

'भगवन्, मेरे मन का हर्ष न जाने समा क्यों नही रहा है ? मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं अपनी आत्मा का परमावर्त पूरा करने मे अब एक पल का भी विलम्ब क्यों करू ? मुझे मार्ग दिखाइये प्रभु कि मैं जीवन का समग्र प्राप्य तुरन्त प्राप्त कर लू, एक साथ प्राप्त कर लू, आज ही प्राप्त कर लू '

दीक्षित होने के तुरन्त बाद मुनि गजसुकमाल ने भगवान् नेमिनाथ से उच्चाभिलाषापूवक नम्र निवेदन किया।

'मैं तुम्हारी उत्कृष्ट भावना को समझता हूँ, गज-सुकमाल तुम ऐसी ही भवि आत्मा हो .'

'मुझे ऐसी कठोर साधना का माग दिखाइये भगवान् कि मेरी अभिलाषा और आपकी वाणी दोनो एक साथ फलवती बन जाये। मेरी इस उत्कठा को सफल करें, सवज्ञदेव !' करबद्ध होकर मुनि गजसुकमाल आज्ञार्थ खडे रहे।

'गज मुनि, जो आज्ञा मैंने किसी को नही दी, वह तुम्हें दे रहा हूँ।'

'असीम कृपा है भगवन्, आपकी ?'

'यह मेरी कृपा नही, तुम्हारी ही विचारसरणी की परमोच्चता है।'

'आज्ञा दें, प्रभु !'

'नवदीक्षित को मैंने बारहवी प्रतिमा (पडिमा—कष्ट सहन की उत्कृष्ट अवस्था) धारण कराने का विधान नहीं किया है, किन्तु मैं तुम्हारी सुदृढ़ भावना को देखकर तुम्हें इस प्रतिमा को धारण करने की आज्ञा दे रहा हूँ, गजसुकमाल ! तुम आज रात द्वारिका नगरी की श्मशान भूमि में प्रतिमा धारण कर ध्यानस्थ हो जाओ, तुम्हे तुम्हारा चरम और परम प्राप्त हो जायेगा।'

प्रभु की आज्ञा पा अति हर्षित मन से मुनि गजसुकमार संध्याकाल मे श्मशान भूमि की ओर चल पड़े।

× × ×

अंधकार की हल्की हल्की चादर मे श्मशान का दृश्य भयानक बनता जा रहा था। इधर-उधर चिताएं प्रज्वलित हो रही थी तो चारो ओर फले नरमुंड और अस्थिपंजर एवं झपटते हुए गिद्ध दृश्य की भयकरता को बढ़ा रहे थे। ऐसे ही बीभत्स एवं भयावह दृश्य के बीच मुनि गजसुकमार ने ध्यानस्थ हो प्रतिमा धारण कर ली।

उस समय पास की ही एक प्रज्वलित चिता की रोशनी सीधी मुनि के मुख पर गिर रही थी और उसमे मुनि की तेजोमय आकृति और अधिक भव्य लगने लगी। योग ऐसा बना कि कही कार्यवश जाकर सोमिल ब्राह्मण वापस नगरी में श्मशान के पास वाले रास्ते से लौट रहा था तो उसकी दृष्टि

अचानक मुनि पर जा गिरी। देखते ही वह चौंका कि अरे, आज सुबह ही तो कृष्ण ने उसकी पुत्री का गजसुकमाल के लिये वाग्दान लिया है और शाम को ही उनका भाई तथा उसका होने वाला जवाई साधु कैसे बन गया है? अब उसकी पुत्री का क्या होगा? यह तो घोर विश्वासघात है। सोमिल क्रोध से विक्षिप्त-सा हो गया।

सामने आकर उसने ललकारा—

'ओ गजसुकमाल, मैं अपनी पुत्री के विवाह की प्रतीक्षा कर रहा था और तुम कायर और भगोड़े की तरह साधु बनकर ढोंग करके यहाँ छिपे हुए हो—लज्जा की बात है। यदि ऐसा ही करना था तो मेरे साथ छल क्यों किया, मेरी पुत्री के साथ सम्बन्ध ही निश्चित क्यों किया? बोलो चुप क्यों हो?'

किन्तु मुनि बनने के बाद गजसुकमाल क्या बोलते? वे तो अपने अन्ततम के ध्यान मे डूबे ही रहे—बाहर से उनका अब सम्बन्ध ही क्या रह गया था?

'मैं पूछ रहा हूँ और तुम बोलते भी नही। तुम समझते हो कि मैं तुम्हे क्षमा कर दूगा। तुमने मेरी पुत्री का भविष्य बिगाड दिया है तो मैं तुमसे उसका बदला लेकर रहूँगा। अब भी समय है कि इस ढोंग को छोडकर अपने सम्बन्ध को निबाहो, वरना मुझसे बुरा दूसरा न होगा।'—

सोमिल ब्राह्मण ने चेतावनी दी, किन्तु मुनि तो अपनी आत्म की चेतावनी मे लगे हुए थे, जो भावना की श्रेष्ठ श्रेणिय मे ऊपर और ऊपर उठती ही जा रही थी ।

'तो तुम मेरी नही सुनोगे, गजसुकमाल ? मत सुनो मेरे हाथ से बचकर अब तुम कहाँ जा सकोगे ? चाहे कृष्ण मुझे फाँसी चढा दें, किन्तु मैं तुम्हारे जीवन को जला-जला कर नष्ट करूंगा । याद रहेगा तुम्हें अगले जन्म तक कि मैंने भी बदला लिया था—'

मुनि की मुक्त होने वाली आत्मा न तो अगला जन्म लेने वाली थी और न ही सोमिल के बदले को याद रखने वाली थी, किन्तु सोमिल की पापात्मा उसी समय क्रूर प्रतिशोध के लिये तैयार हो गई ।

जल से गीली हुई चिकनी मिट्टी लाकर पहले सोमिल ने ध्यानस्थ मुनि के सिर पर चारो ओर ऊची-ऊची पाल बाधी और कुछ देर तक उसे सूखने दी । फिर वह पास की चिता से एक मिट्टी के पात्र मे लाल-लाल अंगारे भर लाया और उस दुष्ट ने वे धधकते अगारे मुनि के मस्तक पर उडेल दिये ।

वे धधकते अगारे और सुकुमार गज मुनि के मस्तक पर । कल्पनातीत वेदना का समय था । खोपडी सीभने लगी किन्तु मुनि टस-से मस नही हुए । यही उनका परीक्षा-काल

था, जिसकी सफलता पर उन्हें अपना चरम और परम प्राप्त करना था। न उन्हें अपने शरीर पर तनिक भी राग हुआ और न लेशमात्र भी द्वेष या भाव वे सोमिल ब्राह्मण पर लाये। मरणान्तक पीडा के बावजूद उन्होंने अपने सिर को किंचि-मात्र भी नहीं हिलाया, कारण कि कहीं एकाध अगारा भी नीचे गिर पडा तो उससे किसी भी निरपराध प्राणी की व्यथ ही हत्या हो जायेगी। अपने प्राणो की रक्षा मे अन्य प्राणी का हनन हो जाये—यह न तो वाञ्छनीय है, न करणीय।

मुनि परम स्थिर एव शान्त भाव से उस पीडा को सहते रहे—जैसे यह शरीर उनका है ही नहीं। मन-ही-मन सोमिल को धन्यवाद देते रहे कि उसने उनके चरम कल्याण को एकदम निकट ला दिया।

उन धधकते अगारो ने एक साथ ही दो कार्य सिद्ध कर दिये। नश्वर शरीर को एक ओर जलाकर भस्म कर दिया तो दूसरी ओर अनश्वर आत्मा को मुक्ति के अनन्त आनन्द मे सदा-सदा के लिये प्रतिष्ठित कर दिया।

× × ×

'प्रभु, हमारा गजसुकमाल बहुत ही कोमल था, राज-सुखो मे पला था, फिर भी हठ करके उसने दीक्षा ले ली।

आप कृपा करके बताइये कि उसके साधु-जीवन की पह
रात कैसे बीती है ? इसी चिन्ता से तो प्रभातकाल होते
होते हम दौड़े आये हैं। नवदीक्षित मुनि के हमे दर्शन
कराइये, भगवन्'—वसुदेव, देवकी और कृष्ण तीनो प्रतीक्ष
तुर हाथ बांधे खड़े थे।

भगवान् ने भावोद्रेक मे कहा—'कहाँ हैं मुनि ग
सुकमाल, जिसके मैं तुम्हें दर्शन कराऊ ? वह तुमसे प
छूटा, मुझसे भी छूट गया और पहली ही रात्रि म देह अ
ससार से भी छूट गया है।' यह सुनकर सभी मौन
गये थे।

नर्तकी

छुम छन् न न न, छुम छन् न न न

कोशा नर्तकी आज पूर्ण भावुकता एवं शक्तियों की सजगता के साथ पुष्प-नृत्य कर रही थी—अपने प्रशसकों के विशाल समारोह मे नही, केवल अपने प्रेमी स्थूलिभद्र के सामने अपने ही भवन के एकात प्रकोष्ठ मे। किन्तु स्थूलिभद्र अब वे स्थूलिभद्र नही थे जो कोशा के कटाक्षो से घायल हो जायँ। वे तो उस दायरे को तोडकर मुनि बन चुके थे और अपने सयम व्रत की कठोर कसौटी के लिये ही गुरु-आज्ञा से अपनी ही पूर्व प्रेमिका कोशा नर्तकी के भवन मे चातुर्मास* कर ठहरे हुए थे।

'प्रिय, तुम्हे यह पुष्प नृत्य तो बहुत ही पसन्द था न? फिर

---

*चातुर्मास आषाढ़ शुक्ला १४ से कार्तिकी पूर्णिमा तक के चार माह को कहते हैं, जब जैन मुनि विहार नहीं करके एक ही स्थान पर ठहरते हैं।

आज तुम मेरे मे मग्न होने की अपेक्षा अपने ही मे मग्न कैसे हो ?'—कोशा ने जैसे थकित नयनों से ही यह कहा हो, परन्तु उन नयनो को देखने वाले नयन तो मुदे हुए थे।

मुनि स्थूलिभद्र ध्यानस्थ थे, किन्तु कोशा कहती ही रही अपनी प्रेमव्यथा और थककर चीखती हुई सी बोली—

'क्या तुम अपनी कोशा से एक शब्द भी नही बोलना चाहते ? देखो तो—तुम्हारी बेरुखी ने मुझे कसा बेहाल बना दिया है ?'

तब मुनि ने नेत्र खोले और शान्त स्वर में बोले—

'कोशा, इस छिछले मोह के घेरे को काट कर सारे जगत् से प्रेम करना सीखो और फिर देखो—जीवन म कितना आनन्द आता है, जब वह नैतिकता का जीवन बन जाता है ,'

और स्थूलिभद्र मुनि के उपदेश एव समागम से कोशा नर्तकी, नर्तकी न रही, एक साधिका (श्राविका) बन गई।

× × ×

'गुरुदेव, आपकी आज्ञा का मैंने सर्वांशत पालन किया है और मेरा नम्र विचार है कि उस अनुकूल आपदा मे भी मैं स्थिर रह सका हूँ'—स्थूलिभद्र ने चातुर्मास समाप्ति पर गुरु के सन्निकट पहुँच करबद्ध होकर निवेदन किया।

गुरु अपने स्थूलिभद्र को जानते थे, गद्गद होकर बोले—

'शिष्य तेरी साधना पर मुझे गर्व है।'

गुरु के ऐसा कहते ही अन्य शिष्य विशाखभद्र ईर्ष्या से जलकर चीख उठा—

'एक अबला नर्तकी के यहाँ चातुर्मास कर स्थूलिभद्र तो आपके गर्व का कारण हो गया और बर्बर सिंहो व काले नागो की रौद्रता को भी शान्त कर देने वाला मैं कुछ भी नही।'

गुरु ने शान्ति तथा दृढ़ता से कहा—

'हाँ, कुछ भी नही। प्रतिकूल से अनुकूल आपदा पर विजय पाना अधिक कठिन होता है।'

'आगामी चातुर्मास मैं भी किसी नर्तकी के भवन में करके दिखला दूंगा'—कहता हुआ मुनि विशाखभद्र वहा से सरोष चला गया।

× × ×

'नर्तकी, हम तुम्हारे भवन मे चातुर्मास करने की आज्ञा चाहते हैं।'

सयोग से मुनि विशाखभद्र आगामी चातुर्मास के प्रारम्भ पर कोशा के ही भवन पर चले गये। कोशा को कुछ अनु-

सारे वायुमडल मे एक अद्‌भुत आकर्षण व्याप्त हो र
था। कोशा के शयनकक्ष से निकली ध्वनि सब ओर लह
रही थी।

अपने वक्ष मे मुनि विशाखभद्र ने इस गीत को सु
और तुरन्त त्याग के अपने घमण्ड से वे क्रोधित हो उठे
सब वहाँ से उठकर उसी समय कोशा के शयनगृह के बा
आकर घृणापूर्वक ये व्याख्यान देने लगे—

'नर्तकी, क्या एक मास का हमारा पवित्र सं
तुझ पर कुछ भी असर नही डाल सका ? याद रख–वास
मानव जीवन के पतन का वह गहरा गड्ढा है जिसमें गि
कर मनुष्य अपने आपको हमेशा के लिए खो बैठता है।

'सौन्दर्य के अभिमान मे डूबी हुई नर्तकी, आज
रसमय जीवन कल नीरस हो जायेगा, आज की मस्ती
की वेदना मे फूट पड़ेगी, आज की कोमल देह कल पू
और शुष्क हो जायेगी और आज का यह मदमाता यौवन
जर्जर वृद्धत्व के रूप में बदल जायेगा

'नर्तकी, जीवन के इन अमूल्य क्षणों को प्रेम
मे नष्ट न कर, आत्मिक-साधना में व्यतीत कर। त्याग
जीवन का उत्थान मार्ग है।'

कोशा ने तत्क्षण वीणा को अलग हटाकर बड़ी
सरलता और विनम्रता से क्षमा के स्वर मे कहा—

'मैंने भूल की है, क्षमा करें मुनि, आपके सयम मे वघ्न हुआ, मुझे भी चेतना मिली। भविष्य मे ऐसा कभी ाही होगा, देव !'

× × ×

परन्तु अपने कक्ष मे आने पर मुनि को पुन निद्रा ाहीं आ सकी। तब अपने ही रोष की प्रतिक्रिया प्रारभ हुई।

'मैं कितना निष्ठुर हूँ ? मैंने यह क्या किया ? कोशा े आनन्द का विघ्न मैं क्यो बना ? कितनी सुन्दर लगती ी जब वह गा रही थी ! एक निराला ही मधुर रसस्रोत-ा प्रवाहित हो रहा था। वीणा के तार दिल को कपा ाने वाले थे। आनन्द का अनिवर्चनीय रस टपक रहा था

'सचमुच ही मैंने निर्दयता की है कोशा के साथ झे क्या अधिकार था उसके ही भवन मे उसकी प्रवृत्ति पर ोक लगाने का ? मैं अभी ही जाता हूँ और उससे इस अभद्रता के लिए क्षमा मागता हूँ। वह अवश्य ही मुझे क्षमा र देगी। जब मैं क्रोध की आग मे जला जा रहा था तब ी कितनी सरलता खेल रही थी उसके मुख पर!'

मुनि विशाखभद्र उठे और कोशा के शयन-कक्ष की ोर बढ चले। द्वार पर जाकर रुक गये। निश्चिन्त हो कोशा

सो गई थी। उसके मुख पर खिड़की से आता चन्द्रमा धवल प्रकाश गिर रहा था। उस शुभ्र ज्योत्स्ना में उस रूप और अधिक खिल रहा था। यकायक देखने वाला मालूम नहीं कर सकता था कि प्रकाश की किरणें च से आ रही हैं या कोशा के मुख-मंडल से ही चारों बिखर रही हैं!

मुनि द्वार पर ही यह सब देखकर ठिठक गये—वै रहे। सोचा, जगा दूं, किन्तु उस मोहक दृश्य को देखते की प्यास में वे ऐसा न कर सके।

अचानक कोशा ने करवट बदली। मुनि चमक और शीघ्र ही दबे पांव अपने कक्ष में वापस आ गये।

विशाखभद्र का दिल उनके वश के बाहर होता रहा था। चिन्तन ने मोड़ लिया, यौवन और संसार वास्तविक सुन्दरता को छोड़ आत्मा के काल्पनिक सौन्दर्य आशा में त्याग की साधना के पीछे भटकना पागलपन है आज के प्राप्त सुख की उपेक्षा कर के कल के अव्यक्त की खोज में घूमना मनुष्य की मूर्खता है। यौवन रू जीवन... मस्ती और उसका उपयोग करने के लिये को देह, प्रेममय चितवन और उसके उद्दीपक शीत चांदनी खिले हुए मदमाते फूल और इन सबसे बढ़कर मधुरतम आग्रह—प्रियतम को आह्वान!...

अनुकूलता के अभाव मे मुनि विशाखभद्र की वर्षों से दबी हुई वासना की ज्वाला आज अनुकूलता मे भभक उठी थी। मुनि अति व्याकुल होने लगे।

× × ×

प्रात काल हुआ, प्रकृति खिल उठी। वातावरण मे अद्भुत रम्यता थी पर मुनि को यह सबकुछ ठीक नही लग रहा था। वे तो उसी कालिमामय रात्रि की प्रतीक्षा कर रहे थे, उनका दिल पागल बन चुका था।

समय बहता ही जाता है—पागल और विवेकशील दोनो के लिये। दिन बीता, सध्या आई और आखिर मुनि की इच्छित रात्रि ने भी अपना आधिपत्य जमाया। तब दिन भर का श्रान्त ससार निद्रा की गोद मे चला गया—कोशा भी श्रान्त जगत् की ही सदस्य थी, वह भी सो गई। जगत् के प्राकृतिक क्रम से बाहर निकले हुए थे मुनि विशाखभद्र—जो जाग रहे थे। अतृप्ति की प्यास उन्हे झकझोर रही थी। अतृप्त के मन को शान्ति कहाँ? यौवन, रूप, चादनी और मस्तीभरा समागम. मुनि बुरी तरह से बहक गये थे। वे बेचैन होकर रुपहली रात के मध्य का इन्तजार करने लगे।

अधरात्रि के समय मुनि उठे और कोशा के शयनगृह मे प्रविष्ट हो गये। विगत रात्रि वाला ही दृश्य था—चादनी

मे चमकता हुआ चादी सा मुखडा। मुनि उसे अपलक देखते
रहे—आखिर अपने आपको वे सभाल न सके। उसके पास
पलग पर बैठकर उन्होंने नर्तकी का हाथ अपने हाथ में
लिया। हाथ का छूना था कि कोशा चौंक पड़ी।

'कोशा, प्रिय कोशा!' मुनि विशाखभद्र हाथ
सहलाते हुए हकलाते-से बोले।

'कौन? आप मुनि ?'

'सुन्दरी, अब मुनि मत कहो मुझे। अब मैं तुम्हारा
प्रेमी बनकर उपस्थित हूँ। तुमसे प्रेम की भीख चाहता हूँ
नर्तकी!'

कोशा आश्चर्य में डूबी हक्की-बक्की रह गई थी। फिर
भी सयत स्वर में उसने कहा—

'यह मैं क्या देख रही हूँ, मुनि? कल की रात और
आज की रात मे इतना भयानक परिवतन? क्या तुम्हारे
त्याग की यही गहराई है? मैंने तो तुमसे बहुत कुछ सीखने
की आशा की थी, विशाखभद्र!'

'त्याग! हु हु मैं भ्रम मे था कोशा! ससार का
जीता-जागता सुख छोडकर मैं पागलपन मे भटक रहा था—
न जाने कैसे काल्पनिक आनन्द के लिये? तुम्ही ने तो मुझे
सिखाया है कोशा कि यह यौवन और सौन्दय और दोनों का

प्रतिमा तुम—कितने सुन्दर है ये सब ! मैंने जीवन के इस क्रम को बदल डालने का निश्चय कर लिया है, प्रिये !'

'मुनि, दहाड़ते हुए सिंहो और फुफकारते हुए नागो के सामने अडिग रहने वाले मुनि, क्या वास्तव में तुम एक दुबली-पतली अबला से ही डिग गये और उस अबला से जो स्वयं अब त्यागमय जीवन बिता रही है ?'

'तो मैं तुम्हें भी कहता हूँ, कोशा—तुम भी त्याग के धोखे मे हो। छोड दो इसे, आओ ससार के उन्मुक्त आनन्द-क्षेत्र में हम दोनो रमण करें।'

मुनि विशाखभद्र अत्यधिक उत्तेजित अवस्था मे थे। उनके सिर पर वासना का भूत सवार था। कोशा को लगा कि वे कहीं बलात्कार की कुचेष्टा न कर बैठ, उसने भय की स्थिति में भी चतुराई से बचने का प्रयास किया।

कोशा ने अपने बाहरी प्रभाव को कायम रखते हुए कहा—

'ठहर जाओ विशाखभद्र, मैं तुमसे एक बात पूछना चाहती हूँ।'

'वह क्या ?'

'क्या तुम सचमुच मुझसे प्रेम करने लगे हो अथवा केवल कपट जाल और वासना का खेल है, तुम्हारा प्रेम ?'

मुनि अब मुनि कहाँ रह गये थे ? वे तो निगोड़ी

मे चमकता हुआ चादी-सा मुखडा। मुनि उसे अपलक देखते रहे—आखिर अपने आपको वे समाल न सके। उसके पास पलग पर बैठकर उन्होने नर्तकी का हाथ अपने हाथ मे ले लिया। हाथ का छूना था कि कोशा चौंक पडी।

'कोशा, प्रिय कोशा!' मुनि विशाखभद्र हाथ को सहलाते हुए हकलाते-से बोले।

'कौन? आप मुनि ?'

'सुन्दरी, अब मुनि मत कहो मुझे। अब मैं तुम्हारा प्रेमी बनकर उपस्थित हूँ। तुमसे प्रेम की भीख चाहता नर्तकी!'

कोशा आश्चर्य मे डूबी हक्की-बक्की रह गई थी। फिर भी सयत स्वर में उसने कहा—

'यह मैं क्या देख रही हूँ, मुनि? कल की रात और आज की रात मे इतना भयानक परिवर्तन? क्या तुम्हारे त्याग की यही गहराई है? मैंने तो तुमसे बहुत कुछ सीखने की आशा की थी, विशाखभद्र!'

'त्याग! ह ह मैं भ्रम मे था कोशा! ससार का जीता-जागता सुख छोडकर मैं पागलपन में भटक रहा था—न जाने कैसे काल्पनिक आनन्द के लिये? तुम्हीं ने तो मुझे सिखाया है कोशा कि यह यौवन और सौन्दर्य और दोनों की

'कोशा, यह क्या कर डाला तुमने ? बीहड वन, नदी, घाटी और पर्वतो के महीनो के मेरे रोमाचक कष्टो के फल का तुमने ऐसा दुरुपयोग किया, यह क्या मेरे प्रेम का अपमान नही है ?'

'रत्नकम्बल के तनिक-से परिश्रम का बडा ख्याल आया तुम्हें मुनि और वर्षों की कठोरतम साधना को एक पल भर मे भ्रष्ट करने की इच्छा करते हुए तुम्हें पल भर के लिए भी विचार नही आया ? मुनि, त्याग का रहस्य हृदय की आन्तरिक भावनाओ मे निहित होता है, केवल मुनि-वेश धारण कर लेने मात्र से कोई त्यागी नही हो सकता

'मुनि विशाखभद्र, कहा मैं वासना की पुतली कहलाने वाली नर्तकी और कहा तुम त्याग की मूर्ति कहलाने वाले मुनि ? अपने स्वरूप की ओर एक बार निहारो तो सही..

'मनुष्य जीवन आसान नही और उसमे त्याग की साधना आसान नही । मेरा नम्र निवेदन है, मुनि कि एक बार फिर से अपने अतीत मे प्रवेश कर जाओ और उन बीते हुए वर्षों को विफल न बनाओ '

मुनि विशाखभद्र के ज्ञानततुओ पर जसे एक सार्थक चोट लगी । वे नर्तकी की प्रेरणा मे खो गये कि वे कहा से गिरे, कैसे गिरे और गिर कर किस रसातल तक पँहुच गये हैं ?

बन गया है। वे एकदम मनिमूढ़-से हो गये किन्तु वासन
तुरता ने फिर भी उन्हें निराशा का पल्ला नहीं पकड़
दिया। वे वेश बदलकर फिर नेपाल की ओर चल पड़े।

× × ×

'तुम आ गये, मुनि!'

'हां कोशा, मैं आ ही गया हूँ। कितनी कठिनाइ
आई किन्तु कोशा के नाम से ही सब कटती गई। एक प
भी तो मैं तुम्हें नहीं भूल सका हूँ, मेरी प्रिये—यह लो तुम्हा
प्यारा रत्नकम्बल—और विशाखभद्र न अपनी काख से चमच
माता रत्नकम्बल निकाल कर कोशा के हाथों में थमा दिया।

'ठहरो, पहले मैं स्नान कर लेती हूँ'—यह कहकर
कोशा न रत्नकम्बल पुन विशाखभद्र के हाथ म दे दिया
और स्वय स्नान करने भीतर चली गई।

स्नानोपरान्त कोशा ने विशाखभद्र के हाथों से उस
रत्नकम्बल को लिया और उनके देखते-देखते उससे अपने पाँव
पोंछ कर कोशा न रत्नकम्बल को बाहर नाली के कीचड़
मे फेंक दिया।

विशाखभद्र को काटो तो खून नहीं। वे भ्रमित-से
हो गये कि कोशा ने यह क्या कर डाला? रोप से भरकर
वे कठोर स्वर मे बोले—

'कोशा, यह क्या कर डाला तुमने ? बीहड वन, नदी, घाटी और पर्वतों के महीनो के मेरे रोमाचक कष्टो के फल का तुमने ऐसा दुरुपयोग किया, यह क्या मेरे प्रेम का अपमान नही है ?'

'रत्नकम्बल के तनिक-से परिश्रम का बडा ख्याल आया तुम्हें मुनि और वर्षों की कठोरतम साधना को एक पल भर मे भ्रष्ट करने की इच्छा करते हुए तुम्हे पल भर के लिए भी विचार नही आया ? मुनि, त्याग का रहस्य हृदय की आन्तरिक भावनाओ मे निहित होता है, केवल मुनि-वेश धारण कर लेने मात्र मे कोई त्यागी नही हो सकता.. ..

'मुनि विशाखभद्र, कहा मैं वासना की पुतली कहलाने वाली नर्तकी और कहा तुम त्याग की मूर्ति कहलाने वाले मुनि ? अपने स्वरूप की ओर एक वार निहारो तो सही

'मनुष्य जीवन आसान नही और उसमे त्याग की साधना आसान नही । मेरा नम्र निवेदन है, मुनि कि एक बार फिर से अपने अतीत मे प्रवेश कर जाओ और उन बीते हुए वर्षों को विफल न बनाओ '

मुनि विशाखभद्र के ज्ञानतंतुओ पर जैसे एक सायक चोट लगी । वे नर्तकी की प्रेरणा मे खो गये कि वे कहा से गिरे, कैसे गिरे और गिर कर किस रसातल तक पहुंच गये हैं ?

एक बार गहरे गिर कर भी जिसका चैतन्य पुन श्री आए—उसी को कहते हैं कि सुबह का भटका कम-से-कम शा को घर लौट तो आया। कोशा की ललकार ने मुनि विशाखभ को फिर मुनि बना दिया। भावविह्वलता से उनके नै से प्रायश्चित्त के आंसू झर-झर गिरने लगे। कोई शब्द उन मुंह से निकाल सके, ऐसी उनकी मानसिक अवस्था नहीं रही

तभी कोशा के मुख से निकला—

'मुनि, शायद आप जानते हैं या नहीं, किन्तु आ स्थूलिभद्र मुनि की महानता मेरे लिए और भी ऊँची हो है। वे पूज्य हैं—श्लाघ्य हैं।'

स्थूलिभद्र का नाम—एक क्षण के लिये विशाखभद्र चौंके, किन्तु उनकी वासना के साथ उनका क्रोध और मान भी बह गया था। फिर भी लज्जा से आरक्त हो सहज सरलता से वे बोले—

'तुम स्थूलिभद्र को कैसे जानती हो ?'

'पहले मैं उनकी प्रेमिका थी और उनके मुनि बनने के बाद गत चातुर्मास से उनकी शिष्या हूँ'—यह कहते हुए कोशा के मुख पर आत्मानन्द की तरल आभा खेल रही थी।

आंसू भरी आंखों और रुंधे हुए कंठ से मुनि विशाख भद्र ने धीरे से इतना ही कहा—

'तो तुम मुझे अपना शिष्य बना लो कोशा, ताकि मुनि स्थूलिभद्र की शिष्या का शिष्य होकर सच्चा प्रायश्चित्त कर सकूं। आज मैं समझा हूँ—नैतिकता किसी की थाती नहीं, मन की शुद्ध भावनाओं की सहेली होती है।'

बहुत दूर से आ रहे हैं, ब्रह्मदेव !'

'भाई दूर ही नहीं, बड़ी दूर से'—वृद्ध ने यह कहकर ऐसा निःश्वास छोड़ा जैसे अब चलने से छुट्टी पाकर उनके मन ने एक राहत की सास ली हो।

'तब आपने अपनी यह यात्रा कब और क्यों प्रारंभ की थी'—द्वारपाल ने पूछा।

'मैंने अपनी यह यात्रा कब प्रारंभ की—खूब पूछा तुमने भी'—और वृद्ध जैसे अपने अतीत में खो गया और उसी खोये हुए अनुभव से उसने धीरे धीरे कहना शुरू किया—

'मेरी यात्रा की अब तो एक कहानी ही हो गई है। इतना लम्बा अर्सा बीत गया है इस यात्रा को शुरू किये कि इसीलिए म यह कहानी ही हो गई है

'जब मैंने अपनी यौवन की देहरी पर अपना पांव रखा ही था—नई बहारें देखी नहीं थीं, तभी मैंने चक्रवर्ती सनत्कुमार† के अनुपम सौंदर्य की कीर्ति सुनी। लोगों ने बताया कि ऐसी सुन्दरता आज तक किसी ने नहीं देखी—वह अद्वितीय है, दर्शनीय है

'बस, तुरंत ही ऐसे सौंदर्य के दर्शन की मेरी उत्कंठा

---

†चक्रवर्ती का आयुष्य साधारण लोगों से कई गुना माना गया है।

अति उग्र बन गई और मैं उसके हेतु घर से निकल पडा। अनुमान लगा लो-तभी से मैं चल रहा हूँ-बराबर चल रहा हूँ-इसी उत्सुकता मे कि सारी दूरियाँ काट कर एक दिन मैं उसका सौंदय-दर्शन अवश्य कर सकूंगा। अब तो मैं मजिल प‍ पहुँच गया हूँ, भाई मुझे अधिक न तरसाओ, मेरी मदद करो चक्रवर्ती महाशय से इस तरह निवेदन करो कि वे मुझे अ‍ एक पल भी नष्ट किये बिना अन्दर बुला लें और उनका सौन्दय दर्शन करने दें—' वृद्ध ने सचमुच ही द्वारपाल को हाथ जो‍ लिये।

वृद्ध ब्राह्मण के मुख पर ऐसी भावपक चमक थी जैसे पक्वान्न प्राप्त होने पर कई दिनो के भूखे की आकृति प‍ चमक चमक उठती है और एसी ही जल्दबाजी कि वह अ‍ एक क्षण भी रुक नहीं सकेगा। उसे देखकर द्वारपाल ने भ‍ विलम्ब करना उचित नही समझा और वृद्ध के लिये प्रवेशाज्ञ लाने वह तुरन्त भीतर चला गया।

× × ×

'जय हो छ ण्ड के नाथ की—'चक्रवर्ती के प्रथम दर्शन के साथ ही वृद्ध ब्राह्मण ने जयनाद किया।

द्वारपाल ने वृद्ध को ठेठ वही पहुँचा दिया था, जह‍ सनत्कुमार स्नान करने की तैयारी मे अपने स्नानागार मे बै‍ थे। केवल एक वस्त्र लपट रखा था और शरीर का शेष

करते हुए यथास्थान बैठे हुए थे ।

अपनी अपार ऋद्धि एवं अपूर्व ऐश्वय के बीच पार पूर्ण शृंगार किये हुए चक्रवर्ती का सौन्दय जैसे अब सह गुणित होकर प्रदीप्त हो रहा था । वह सौन्दय जैसे दे ही जा सकता था, देखकर उसे बता पाना भी शक्य नहीं था।

चक्रवर्ती के सिंहासन के ठीक सामने वह वृद्ध ब्राह्म खड़ा था । उसने चक्रवर्ती के वचन भी सुने, किन्तु फिर वह इस तरह विचार-मग्न खड़ा रहा जैसे किसी टेढ़े सवा मे फसकर कुछ भूल सा गया हो । उस हजार गुनी सुंदर के सामने भी प्रसन्नता की एक क्षीण रेखा उसकी म्राकृ पर प्रकट नहीं हुई ।

'अरे वृद्ध, इधर देख, गर्दन झुका कर क्या खड़ा है! तब तुझे समझ मे आयेगा कि तेरी सौन्दर्य-दर्शन की चिर अभिलाषा स्नानागार मे पूरी नहीं हुई थी—वह अब हो रही है !' चक्रवर्ती ने भरपूर अभिमान से अपने चेहरे को तान कर फिर कहा ।

पर वृद्ध न तो कुछ बोला और न उसने अपनी गर्दन ही सनत्कुमार की उस सुन्दरता को देखने के लिये ऊपर उठाई ।

'कहाँ खो गये हो, वृद्ध, क्या बात हो गई ? मेरी ओर देखो तो—'

जैसे चक्रवर्ती की आज्ञा का पालन करना जरूरी हो, वृद्ध ने सामने एक सरसरी नजर डालते हुए केवल अपना नकारात्मक भाव दिखलाने के लिये सिर हिलाया।

यह देखकर सनत्कुमार बडे असमजस में पडे कि स्नानागार के सौन्दय-दर्शन की खुशी से पागल बन जाने वाला यह वृद्ध अब उदास और शान्त क्यों हो गया है? बोले—

'कैसी चिन्ता में डूब गये हो, वृद्ध, तुमने अब इस सौन्दर्य-दशन पर अभी तक अपनी कोई सम्मति प्रकट नही की—आखिर क्या हो गया है तुम्हें इस समय?' चक्रवर्ती के स्वर मे अपनी सुन्दरता की प्रशसा सुनने की अजीब व्यग्रता थी।

'क्या कहूं, स्वामी, आपके सौन्दय-दशन का सच्चा आनन्द तो मैं पहली ही भेंट मे पा चुका। अब तो आपकी यह सुन्दरता विकृत हो चुकी है—मेरे लिये अब इसे देखने मे कोई आकर्षण नही रह गया है। आप मुझे क्षमा करें।' वृद्ध ने फिर नीची नजर कर ली।

'क्या कह रहे हो, तुम?'

'मैं सिर्फ सत्य को ही प्रकाश में ला रहा हूं, महाराज, इसमे असत्य कुछ भी नही है।'

'तुम्हारा सत्य मेरी समझ मे नही आ सका है, वृद्ध।'

'राजन्, घी अमृत है, पौष्टिक है, किन्तु कांसे के

पात्र पर उसे बार-बार घिसने से वही विष बन जाता है

'क्या यह अभिप्राय है तुम्हारा कि स्नानागार का म अमृत रूप सौन्दय अब विष रूप बन गया है ? मैं जानना चाहता हूँ कि वह कासे का पात्र क्या है ?' चक्रवर्ती का चेहरा रोष से तमतमा उठा ।

'क्षमा चाहता हूँ, सम्राट्, वह कासे का पात्र आपका अपना अभिमान है । सरलता और सुन्दरता का सयोग बैठता है, अभिमान का नही । अभिमान उस सुन्दरता को विकृत बना देता है ।

'सौन्दय की जो सरसता और यथाथता मैंने स्नानागार म देखी थी, वही अब अभिमान के दुर्योग से मिथ्या अहकार मे बदल कर विकृत हो गई है । शारीरिक सौन्दय वैसे ही नाशवान् होता है जो कि वास्तव म सौन्दय नहीं किन्तु जो भी बाह्य आकषण होता है, वह मान से मिल कर मिट्टी बन जाता है । आप कुछ भी समझें, स्नानागार से लेकर राजसभा तक आपकी सुन्दरता भी इसी दशा को प्राप्त हो गई है ।' वृद्ध एक दार्शनिक की तरह बोल रहा था।

'वृद्ध, तुम जानते हो, यह कहकर तुम मेरे से भी अधिक मेरी सुन्दरता का अपमान कर रहे हो । मैं तुम्हारे कथन का प्रमाण चाहता हूँ ।'

'तो प्रमाण भी दूगा, स्वामी ।'

वृद्ध ने चक्रवर्ती से पीकदान मे थूकने और उसे महा-वद्यो द्वारा परीक्षित कराने का निवेदन किया ।

चक्रवर्ती के आश्चय और दुख का पार नही रहा जब उन्ह महावैद्यो ने बताया कि उनके थूक मे सोलह महा-रागो के कीटाणु पाये गये हं । अपने शरीर की इस अनोखी सुन्दरता की एसी दशा पर जैसे वे तनिक भी विश्वास नही कर पा रह थ । विचारो की घनी चादर के नीचे उनका मान और मन दोना दब गये । टूटे हुए स्वरो मे वे धीरे-धीरे बोलने लगे—

'मैं समझा वृद्ध, नश्वर पदार्थों पर अभिमान करना भारी भूल है । यह दैहिक सौदय, साज-सज्जा और शृगार—जिनकी उत्कृष्टता पर मैं अभिमान करता हूं, एक दिन नष्ट हो जायेंगे और उसी दिन मेरा यह अभिमान भी खडित हो जायेगा । किन्तु सच्चा स्वाभिमान वह है जो अमर गौरव के रूप मे बना रहे । मैं अब उसी गौरव को प्राप्त करूगा

'मेरा गव आज खडित हो गया है, पर मुझे एक नई राह मिली है । तुमने मेरी आखें खोल दी हैं, वृद्ध, तुमने मुझे जीवन का एक अमूल्य पाठ पढाया है । सच्ची सुन्दरता शरीर में नही, मनुष्य की कृति में है—सहज सरलता मे है जो अमर रहती है । यथाथ में आत्मा का सौदय ही अपूर्व और अनश्वर होता है, अत वही उपासना के योग्य है

'वृद्ध, तुम मेरे गुरु हो . '

और सुन्दरतम छ खड के नाथ का माथा ज्यों ही सुन्दरता के एक पारखी वृद्ध के पावों में झुकने लगा, त्यों ही चक्रवर्ती को दिखाई दिया कि वृद्ध के स्थान पर देदीप्यमान ज्योति से ज्योतित देव उन्हें ही प्रणाम कर रहा है।

× × ×

'मुनिवर, आपके शरीर में सोलहों रोग अपनी तीव्रता को लिए हुए प्रकट हो रहे हैं, फिर भी किसी औषधि का सेवन नहीं करते, देव!'—एक भक्त ने मुनि सनत्कुमार से पूछा और औषधि-सेवा के लिए आग्रह किया ।

'इन बेचारे रोगों के लिये औषधि ? ये तो शरीर के रोग हैं और जब शरीर स्वयं नाशवान् है तो उसके साथ ये रोग भी नष्ट हो जायेंगे। इनकी औषधि भी कोई बड़ी बात नहीं है, वह तो मेरे पास ही है, क्योंकि इन रोगों को मिटाने का न मेरा लक्ष्य है और न मेरे पास समय। मैं तो आत्मा के रोगों को मिटाने के प्रयास में लगा हुआ हूँ, भव्य !'

मुनि ने अपने मुह का थूक लेकर अपने शरीर के एक भाग पर मला और उसके मलते ही उतने भाग पर कुष्ठादि सारे रोग समाप्त होकर पल भर में शरीर का वह भाग कचन की तरह दमकने लगा। भक्त उसे आश्चर्यान्वित होकर

देखता ही रह गया।

तब मुनि सनत्कुमार ने आगे कहा—

'सच्ची बात तो यह है कि मैं इन रोगों को ठीक करना नही चाहता। मैं इन रोगों की वेदना में मेरे शारीरिक सौन्दर्य के पूर्व अभिमान को पूरी तरह से गला देना चाहता हूँ ताकि अविनाशी आत्मिक सौन्दर्य का आविर्भाव हो सके। मैंने यह देख लिया है कि नश्वर पदार्थों पर अभिमान-भरा स्वामित्व जतलाने वाले के हाथ कष्ट और पश्चात्ताप के सिवाय कुछ नही आता।'

भक्त अपार श्रद्धा से अभिभूत होकर बोला—

'पर आप कितने कष्टसहिष्णु हैं ? धन्य हो, गुरुदेव !' और वह सनत्कुमार के चक्रवर्ती से मुनि जीवन के आदर्श पर गभीरता से विचार करने लगा।

वह सोचने लगा—शरीर के सौन्दर्य में व्यामोहित होकर ससार में दीवाने इन्सान न जाने क्या-क्या अनर्थ करते रहते हैं ? अपना भान भूल जाते हैं कि उन्होंने सत्य को कहां छोड दिया है और मिथ्या को वरण करके किन-किन बुराइयो मे चक्कर लगा रहे हैं ? वास्तव में चमडी का काला-काला नहीं होता बल्कि चमडी का गोरा होते हुए भी जो मन से काला है, वही काला कहा जाना चाहिये। स्वभाव की सुन्दरता अथवा असुन्दरता ही मूल स्थिति होती है।

इसी समय मुनि सनत्कुमार 'सुन्दरम्' के रहस्य का उद्घाटन करते हुए कहने लगे—

'सौन्दर्य दर्शन जीवन का चरम उद्देश्य होता है और होना चाहिये, परन्तु संसार उस सौन्दर्य के स्वरूप को समझने में भूल करता है। मन, वाणी और कर्म को सत्य की राह पर चला देना ही वास्तविक सौंदर्य के निकट पहुँचना है और इस तरह जो वास्तव में सुन्दर है, वही परमानन्द का अनुभव करता है

'केवल शारीरिक सौन्दर्य प्रवंचना है, क्योंकि वह नश्वर है और नश्वर में अनश्वर आनन्द कहाँ से आयेगा? यदि अनश्वर आनन्द चाहिये तो फिर अनश्वर आत्मिक सौंदर्य को ही अपनाना होगा। ऊपर से रोगी और अतीव असुन्दर देह वाला मैं अपने आपको आत्मिक-सौन्दर्य के समीप गमन करता हुआ अनुभव कर रहा हू और यही मेरा सच्चा सौन्दर्य दर्शन है। सौन्दर्य शरीर में नहीं, वरन् मनुष्य की कृति में है, देवानुप्रिय !'—और मुनि का मुखमंडल दिव्य तेज से चमक रहा था।

पदाघात

महाराज श्रेणिक अपने भव्य झरोखे मे बैठे इसी चिन्ता मे डूबे हुए थे कि महारानी धारिणी के दोहृद (गर्भावस्था की इच्छा) की इस असमय मे कसे पूर्ति की जाये ? वशाख माह की भीषण तापतप्तता और उष्णता मे भला मेघाच्छादित गगन से बरसते हुए सूक्ष्म जलकणो मे भ्रमण के आनन्दानुभव की इच्छा कैसे पूरी की जा सकती है ? दोहृद पूरा न हो—यह भी उचित नही, क्योंकि इसका कुप्रभाव माँ और बालक के मानस पर अतृप्ति की छाप अंकित कर सकता है ।

महाराज कभी प्रखर किरणो से प्रदीप्त उस सूर्य की ओर देखते तो कभी नीचे तपती हुई धूमिल धरती की ओर तथा अन्यमनस्क होकर उपाय खोजने म अविक विचार-व्यस्त हो जाते ।

'महाराज सुख और वैभव से भरे इस राज्य मे राज्य के स्वामी ही किस विशिष्ट चिन्ता मे डूबे हैं ?'—श्रेणिक ने

पुत्र तथा राज्य के प्रधान अभयकुमार ने ऐसे ही समय प्रवे करके विनम्र पूछताछ की।

श्रेणिक ने जैसे सुना ही नहीं, दोपहरी के उस मौ उष्मामरे आकाश को वे उसी तरह गहरी चिन्ता से देख रहे। अभयकुमार उद्विग्न हो गये, फिर बोले—

'आपकी ऐसी गहरी चिन्ता को देखकर मेरा चि अति व्याकुल हुआ जा रहा है, पूज्य!'

श्रेणिक ने एक नजर अभयकुमार के चेहरे पर डा और अपनी उलझन उनके सामने रखने लगे। सब सुन अभयकुमार ने प्रसन्नतापूर्वक निवेदन किया—

'पिताश्री, आप चिन्तित न हों। मेरे एक मित्र देवता हैं और उनकी माया-सहायता से इस असमय में भी सावन की फुहारें बरसाकर माता के दोहद की पूर्ति की जा सकेगी।'

देवमाया ने दोहद को पूरा किया और महाराज की चित्तशान्ति व महारानी की आनन्दानुभूति के साथ यथासमय जिस बालक ने जन्म लिया, उसका नाम इसी संदर्भ में 'मेघकुमार' रखा गया।

× × ×

राजकुमार मेघ चन्द्रकलाओं की तरह बढ़ने लगे। बचपन में सबका निर्दोष प्यार पाकर जिन स्वस्थ संस्कारों

मेघ के कोमल हृदय मे जन्म लिया, उनकी छाया मे मेघ
: शिक्षा ने भी निमल स्वरूप ग्रहण कर लिया। किशोर से
।क बनकर मेघ अपनी आत्मा को भी यौवन की देहरी
(चढा ले गये।

इसी बीच नगर मे भगवान् महावीर का पधारना हुआ।
पने उपदेश में उन्होने जीवन को विकास के सर्वोच्च शिखर
क समुन्नत बनाने की प्रभावशाली प्रेरणा फूकी। राजकुमार
घ भी उस देशना को सुन रहे थे। वह प्रेरणा उनके
न्तस् के कण-कण मे समा गई और विरक्ति के श्रेष्ठ अनु-
वों के साथ उन्होंने महावीर के चरणो मे ही दीक्षित हो
ाने का सकल्प बना लिया।

धर्म-देशना की समाप्ति के पश्चात् राजकुमार मेघ ने
ढे होकर प्रभु की सेवा मे करबद्ध निवेदन किया—

'प्रभु, मैं अपने सामने संसार की जलती हुई ज्वालाओ
ो देख रहा हूँ और उसम शीतलता के पुज आप ही हैं।
| आपके चरणो में दीक्षा लेकर ही अपना त्राण समझ रहा
| मुझे अपने चरणो मे थोडी-सी जगह दे दीजिये, भगवन्!'

महावीर क्या कहते—वे अपने ज्ञानालोक मे जान रहे
े कि राजकुमार मेघ अपने मानव-जीवन को इसी जन्म में
म्पूर्ण सार्थक बना देने वाले हैं। उन्होने मर्यादा की भाषा
में कहा—

'हे देवानुप्रिय, तुम्हें जैसा सुख हो, वैसा करो, किन्
इसके लिये जो कुछ तुम्हें करना है, उसमें विलम्ब बत्त
मत करो।'

'पूज्य माताजी, आज मैंने भगवान् महावीर के दर्श
किये'—मेघकुमार ने महलो मे पहुँचकर अपनी माता स
निवेदन किया।

माता धारिणी ने पुलकित होकर कहा—

'पुत्र, तुम्हारे नेत्र पवित्र हो गये।'

'माँ, मैंने उनकी दिव्य वाणी भी सुनी।'

'बेटा, तुम्हारे कान भी पवित्र हो गये।'

'मैंने उनके चरणों का स्पर्श भी किया है।'

'तुम्हारा सम्पूर्ण शरीर पवित्र हो गया है पुत्र'—माँ
धारिणी ने अपने बेटे मेघ को अपने हृदय से चिपका लिया।

'किन्तु माताजी, इस पवित्र देह में अब मैं अपवित्र
आत्मा को कैसे रखूं ?'

धारिणी ने चौंक कर पूछा—

'इसका क्या अर्थ है, मेघ ?'

'माँ, मैंने भगवान् के चरणो मे दीक्षित हो जाने का
निश्चय किया है, जिससे अपनी आत्मा को भी उतनी ही
पवित्र बना सकूं।'

माँ अपने बेटे का मुह ही निहारती रह गई, ममता के आवेग से उनके हृदय मे ऐसी आधी चली कि वह धम् से वही गिर पडी।

मनुष्य यदि अटल निष्ठा एव दृढ सकल्प के साथ किसी भी सत्प्रवृत्ति मे सलग्न होने का दृढ निश्चय कर लेता है तो विश्व की कोई भी शक्ति उसे अपने निश्चय से डिगा नही सकती। वास्तव मे कार्यसिद्धि अडिग निश्चय एव आत्म-विश्वास मे ही निहित है। मेघकुमार भी इसी धरातल पर खडे हो गये।

माँ ने ममता के झरते हुए आसुओ से समझाया, पिता ने प्यार से मना किया और सारे सम्बन्धियो व मत्रियो ने मुनि-जीवन की कष्टकारी आपदाओ का चित्र अकित किया किन्तु मेघकुमार निर्द्वन्द्व होकर उन तर्कों का युक्तिपूर्ण एव भावनापूर्ण उत्तर देते हुए कहने लगे—

'भगवान् महावीर के हृदयद्रावक वचनो ने मेरी जीवन-धारा को नया मोड दे दिया है, उस पवित्र धारा को आप कोई भी रोकने की चेष्टा मत करिये। साधु धर्म के सम्यक् आचरण से इस धारा को अमृतमयी बनने दीजिये।'

मेघकुमार की अपूर्व उमग को जानकर माता पिता ने सहर्ष दीक्षा की अनुमति राजकुमार को प्रदान कर दी।

× × ×

आज मुनि मेघकुमार की दीक्षा का पहला दिन था। सायकालीन धार्मिक क्रियाओ से निवृत्त होकर मुनि-जन अपने अपने स्थल की व्यवस्था करने लगे। साधु अवस्था म अर मेघकुमार का राजकुमार होने के नाते कोई महत्त्व नही था। साधु-अवस्था मे तो दीक्षा-वृद्धत्व के अनुसार ही सम्मान का क्रम होना है।

दीक्षा-वृद्धत्व का अर्थ होना है गुणों की वरिष्ठता। चाहे गृहस्थ का जीवन हो अथवा साधु का जीवन—वास्तव मे धन या पद नही, बल्कि आत्म की उन्नत अवस्था ही सच्चे सम्मान की मापदण्ड होनी चाहिये। गुणपूजा चैतन्य की प्रतीक है तो धन, प्रतिष्ठा या व्यक्तिपूजा जड़त्व लाने वाली होती है। यही कारण है कि साधु-जीवन मे सच्ची प्रतिष्ठा योग्यता एव आदर्श पर आधारित होती है। मुनि मेघकुमार के लिए भी अब यही कसौटी बन गई थी।

मुनि मेघकुमार दीक्षा म सभी मुनियो से छोटे थे। अत उनका सोने का स्थान सभी मुनियो के बाद सबसे अन्त मे नियत हुआ जो करीब-करीब प्रवेश-द्वार के पास आ गया था। नवदीक्षित होने के कारण सभी मुनियो के सोने के बाद वे भी अपनी पतली-सी पथारी पर लेट गये। मखमल पर पथरी-सी पथारी और गुदगुदी गादियो पर सोने वाले मेघ कुमार को भला नींद कहाँ से आती?

उनका मन तरह-तरह के विचारो मे गोते लगाने

लगा। कभी महलों के मनमोहक दृश्य और आकर्षक सुख सामने आते तो कभी माता-पिता की दुलारभरी बातें याद आने लगीं। कभी ऐसा महसूस होने लगा—जैसे उनका अपना यहाँ कोई नहीं है जो उनको इस दशा में सान्त्वना के दो शब्द भी कहे। नींद नहीं आ रही है तो भला कौन पूछने वाला है? घर होता तो नींद जरा सी उचाट होते ही कितने जन उन्हें तुरन्त सम्हालने आ जाते, उनके सुख-साधन का कितना ध्यान रखा जाता? यहाँ तो उनके सोने का स्थान भी द्वार के पास ऊबड़ खाबड़ फर्श पर नियत किया गया है, यह सब सोचते-सोचते उनका चित्त विकल हो उठा।

विचारों के घेरों में गिरते उलझते उनकी आँख लगी ही थी कि निवृत्ति को जाते हुए अन्धकार के कारण एक मुनि की ठोकर अचानक उनके लगी और 'क्षमा' कहकर मुनि आगे निकल गये। पदाघात से नव मुनि की नींद टूट गई। फिर जरा-सी आँख लगती कि फिर किन्हीं मुनि का पदाघात मेघकुमार के शरीर पर लगता और वे भी 'क्षमा' कहकर आगे बढ़ जाते।

एक-एक करके अनेक पदाघात उस पहली ही रात्रि में नवदीक्षित मुनि मेघकुमार को सहन करने पड़े। द्वार के पास होने से अँधेरे में अनजाने में मुनियों के पाँव उनके किसी-न-किसी अंग से टकरा ही जाते थे। आघात पर आघात और

वे भी मुनियों के रूखे और कड़े पैरों के उनके कोमल शरीर पर, उनकी सहनशक्ति ने जवाब दे दिया।

अब उनकी झुंझलाहट और क्रोधाग्नि का पार नहीं रहा। वे सोचने लगे—उन्होंने किसी का कहना नहीं माना और घर छोड़ दिया—यह भारी मूर्खता हो गई है। जब एक ही रात्रि मे इतने पदाघात लग रहे हैं, वहा समग्र साधु जीवन मे भला उनकी सुखसुविधा का क्या खयाल रखा जायेगा! ऐसी दीक्षा से तो घर पर ही रहना अच्छा था।

और अब भी बिगड़ा ही क्या है? भोर होते ही भगवान् को उनके वस्त्र पात्र सम्हला कर अपने घर की राह लूंगा—यह सबकुछ सहन करना मेरे वश की बात नहीं है। इतना ही नहीं, मेघकुमार मुनि ने यह भी सोच लिया कि स्वयं भगवान् भी कितना ही समझायें, प्रतिबोध दें तब भी किसी हालत मे मैं नहीं मानूंगा और हर तरह से मैं इस फंदे से निकल भागूंगा।

तनिक से पदाघातों ने मेघकुमार के हृदय की समस्त पूत भावनाएं दबा दी। उनका चित्त भ्रात होने लगा। वे एक ओर वर्तमान पदाघातों के कष्ट को असह्य मानकर व्याकुल होने लगे तो दूसरी ओर घर के ममतामय वातावरण की मीठी याद में तड़पने लगे और येन-केन प्रकारेण रात्रि के व्यतीत हो जाने की प्रतीक्षा मे आतुर हो उठे।

'क्यों मेघमुनि, रात्रि के पदाघातों से घबरा कर दीक्षा-त्याग के लिये मेरे सामने उपस्थित हुए हो ?'—भगवान् ने अतीव ही मृदुल स्वर में पूछा।

जिस बात को कहने में कोई भारी शर्म महसूस करता हो और उसके कहने के पहले ही अगर सामने वाला उसी बात को प्रकट कर दे तो बात कहने की इच्छा रखने वाला अति ही लज्जित हो जाता है। भगवान् के मधुर वचन सुन-कर मुनि मेघकुमार बुरी तरह सकुचा गये। वे क्या सोच कर आये थे और उनको आश्चर्य हुआ कि यह क्या हो रहा है ?

विरोध या प्रतिरोध का एक शब्द भी मुनि मेघकुमार के मुख से नहीं निकल सका। लज्जा से आरक्त मुख नीचे झुक गया। भगवान् का विरोध करने के विचार तक हवा में उड़ गये। लौटाने को हाथ में लिये साधु के वस्त्र और पात्र छूटकर नीचे गिर पड़े, जैसे शरीर और उसके सारे अंग निष्प्राण हुए जाते हों।

'शान्त होओ मेघ, कष्टसहन आत्मा की सच्ची साधना है। जब तक शरीर का मोह मौजूद रहेगा, आत्मा की ओर दृष्टि ही कैसे मुड़ेगी ? शरीर-सुखों को भूलकर ही तो आत्मा के आनन्द में रमा जा सकेगा।

'जरा से मुनियों के पदाघातों से ही तुम भ्रमित हो

गये ! पहले के जन्म मे तुमने जिस महान् सहनशीलता का आचरण किया था, उसी का शुभ प्रभाव था कि तुम्हारा गर्भावस्था में तुम्हारी माता का दोहद पूरा हुआ और मुझे मेरा प्रतिबोध लगा। इतना बड़ा साधु-धर्म तुमने ग्रहण किया और इतने छोटे-से कष्ट से तुम घबरा गये।..

'उत्थान-मार्ग पर चरण बढ़ा कर अब पुनः पतन की ओर बढ़ना चाहते हो। कष्ट कैसा भी हो, कभी असह्य नहीं होता, क्योंकि सहनशीलता सभी कष्टों से अधिक बलवती होती है। देखो, मैं तुम्हें तुम्हारे पहले का जन्म दिखाना चाहता हूँ - स्मरण करो और अपने उच्च भविष्य के निर्माण पर डट जाओ... .'

× × ×

इतना विशाल वन, किन्तु पशु-पक्षियों के चीत्कार में सारा वन-प्रान्तर गूंज उठा। शक्तिशाली-से शक्तिशाली पशु और अशक्त-से-अशक्त पक्षी अपने प्राण बचाने के लिये किसी प्रकार उस वन से बाहर निकल जाने का पूरा यत्न कर रहा था। इस भगदड़ का कारण यह था कि उस वन के सूखे बांसों वाले क्षेत्र मे दवाग्नि लग गई थी और वायु-वेग के साथ वह समूचे वन-प्रान्तर मे फैल रही थी। आग की लपेट से बचने के लिये प्रत्येक पशु-पक्षी जीतोड़ कोशिश में लगा हुआ था।

मेघकुमार अपने पूर्वजन्म मे इस वन के स्वामी गज-राज थे। आपत्काल को दृष्टि मे रखकर इस हाथी ने उस घने वन के बीच एक छोटा सा मैदान पहले से साफ करके तैयार रखा था, अत छोटे-बड़े सभी जीव-जन्तु इसी मैदान में अपने आपको ठूस रहे थे। यह हाथी भी इसी मैदान मे शान्त भाव से खडा था। उसके चारो पावो के बीच और आस-पास इतने छोटे-छोटे पशु जमा हो गये थे कि कही तिल रखने तक की जगह भी नही बची थी।

तभी उस हाथी को अपने पेट पर खाज महसूस हुई। बहुत रोकने पर भी जब खाज ने जोर लगाया तो उसने खुजलाने के लिये अपना एक पैर उठाया और उससे खाज करनी शुरू की, तभी उस रिक्त स्थान मे एक खरगोश आकर बैठ गया, जिसे अभी तक कही भी पाँव टिकाने की जगह नही मिली थी। पैर नीचे रखते समय जब हाथी को वहाँ किसी प्राणी के आकर बैठ जाने का आभास हुआ तो उसने अपना पैर पुन ऊपर उठा लिया।

दया से द्रवित हाथी के मन को यह स्वीकार नहीं हुआ कि वह उस खरगोश को कुचल डाले। हाथी अपने तीन परो पर ही खडा रहा। पूरे दो दिनों तक दावाग्नि जलती रही, किन्तु हाथी ने अपनी सहनशीलता की सीमाएँ नहीं तोडी। उसका शरीर चूर-चूर होने लगा, किन्तु उसने अपना एक पैर ऊपर उठाये ही रखा।

दावाग्नि के शान्त होने पर जब पशु पक्षी वहाँ से सरकने लगे और मैदान खाली होने लगा तब वह खरगोश भी वहां से फुदक गया। किन्तु तब तक हाथी का शरीर भयंकर थकान से टूट चुका था। वह वहीं गिर पड़ा और मर गया, किन्तु सहनशीलता की जिस श्रेष्ठ भावना से उसका मन अन्त समय तक परिपूरित रहा, उसके फलस्वरूप उस हाथी की आत्मा को जो पुण्य का प्रसाद मिला, वह उसका मेघकुमार का जन्म ही तो था।

× × ×

भगवान् महावीर ने उद्बोधित किया—

'उज्ज्वल भविष्य के धनी मेघ, हाथी के रूप में चाहे तुमने एक छोटे से प्राणी की ही रक्षा की, परन्तु एक तो तुम्हारी वह अनुपम और अपूर्व कष्ट-सहिष्णुता—जिसमें सहन करने की कोई सीमा नहीं और इस रात्रि में तुमने इतने-से छोटे कष्ट से अपनी स्वेच्छा से ग्रहण किये हुए पवित्र साधु-धर्म से भ्रष्ट होने का निश्चय कर लिया? अपने पूर्व जन्म को देखो, सोचो और समझो।'

ज्यों-ज्यों मुनि मेघकुमार की अन्तर्दृष्टि के पथ में पूर्व जन्म के चित्र एक-एक करके उभरने लगे, उनके मुख पर प्रायश्चित्त की रेखाएँ खिंचती ही चली गईं। एक तीव्र-सी

ग्लानि ने उनके मानस को झकझोर दिया कि कहाँ तो वह शान्त सहनशीलता और कहाँ यह आज की अशान्त असह्यता— सचमुच ही उनके चरण उत्थान-पथ को छोड़कर पतन के गर्त की ओर क्यो बढ चले हैं ? वे अपने इस मानसिक पतन पर भगवान् के सामने खड़े गहरी लज्जा महसूस करने लगे।

'क्या विचार कर रहे हो, मेघ ? ज्यो ही दुर्बलता को मिटा दोगे, एक अनूठा पुरुषार्थ जागृत हो जायेगा जो तुम्हें अपने चरम पर पहुँचा देगा।'

महावीर की इस प्रेरणा ने मेघकुमार के आहत मन पर मलहम का काम किया। पतन की ग्लानि को इस प्रेरणा ने धो डाला। उनके मन में अद्‌भुत साहस का सचार होने लगा। सहिष्णुता और शान्ति लाभ की कामना बलवती बन गई। मुनि मेघकुमार ने विनम्र और शान्त भाव से प्रभु के ज्योतिमय मुख मडल को निहारते हुए निवेदन किया—

'भगवन्, क्षमा करें। इस पतनोन्मुखी आत्मा को डूबते हुए आपने बचा लिया। प्रभु, मैं दोषी हूँ, मैंने साधु-नियमो की भयकर अवहेलना की है।'

मुनि मेघकुमार पश्चात्ताप के खेद और नव-सकल्पी साहस के हर्ष से मिश्रित आसुओ से भगवान् के पावन चरणो को धो रहे थे और क्षमा के सागर महावीर केवल मन्द-मन्द मुस्कुरा रहे थ।

अनमोल मोती

'अरे मेहतारजकुमार मैं अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसा
तुझे सचेत करने आया हूँ कि तू इस ससार के माया-च
से बाहर निकल। भूल मत कि यह ससार मृगतृष्णा है—जे
कुछ दिखाई देता है, वह भ्रम है। यह तो सुनहरी क्टा
के समान है, जो दीखने मे सुदर दिखाई देती है, लेकि
लगने पर आंतों को चीरकर बाहर फक देती है। इ
भूल-भुलैया मे तू अपने स्वत्व को भुला न दे—इसीलिये
तुझे सावधान कर रहा हूँ '

मेहतारजकुमार अपने सामने अचानक एक दिव्य मू
को निहार अचरज से भर उठा। उसे समझ मे नहीं आ
कि यह देव कौन है, उसने उसके सामने क्या प्रतिज्ञा
थी और वह कौन-सी सावधानी दिलाने आया है?

वह दिव्य मूर्ति से पूछने लगा—

'आप कौन हैं और मुझे सचेत करने का आपका क

अभिप्राय है ?'

'ओहो, आश्चर्य ! तुम अपना कर्तव्य भूल जाने के साथ साथ क्या मुझे भी भूल चुके हो ? परन्तु ध्यान रखो—मैं तुम्हें भूला नही हूँ और इस समय भी अपनी प्रतिज्ञानुसार ससार से वराग्य ले लेने के लिये चेतावनी देने हेतु उपस्थित हो गया हूँ—'देवता ने मेहतारज को याद दिलाने का प्रयास किया।

'प्रियवर, क्षमा करें – मैंने आपको पहिचाना नही और न ही मुझे किसी प्रतिज्ञा की याद आ रही है।'

'तो मेहतारज, मुझे तुम्हे हमारे पूर्वभव की कहानी सुनानी ही पडेगी।'

× × ×

'भाई गोविन्द, तुम्हारी क्या राय है ? जीवन को कीचड में घृणित बनाये रखें या उसे धोकर उज्ज्वल बना लें ?'

'ईश्वर भ्राता जी, महात्मा का उपदेश मैंने भी सुना है। बडे भाई के पीछे-पीछे छोटा भाई भी चलने को तैयार है। आप तो अपनी राय बताइये और मैं भी चल पडूंगा।'

ईश्वर और गोविन्द दोनों सहोदर भ्राता थे। दोनो ने एक साथ महात्मा का उपदेश सुना और सयोग से दोनो ही एक साथ उस उपदेश से प्रभावित हुए तथा दोनो ने एक

साथ दीक्षा ग्रहण करके सयम की आराधना आरम्भ किया।

किन्तु सयम-साधना के पथ पर दोनो साथ-साथ न चल सके। अडिग गति से ईश्वर के चरण तो उस पथ पर बढ़ते रहे पर गोविन्द के चरण कभी डगमगाते, कभी लड़खड़ाते और कभी रुक जाते।

'कितने भीषण कष्ट सहने पड़ते हैं इस साधु जीवन मे? और इन कष्टो का क्या प्रतिफल मिलेगा, इसका कुछ पता नहीं'—एक दिन घबराकर गोविन्द मुनि ने ईश्वर मुनि को कहा।

'तुम्हारे मन म यह दुर्बलता क्यों आने लगी है, गोविन्द! सयम की आराधना क्या कोई फल पाने के लिये की जाती है? उसका तो एकमात्र लक्ष्य है—जीवन के स्वर्ण को तप की आग म तपाकर न केवल उसे निखार देना बल्कि उसे कुन्दन बना देना। दीक्षा लेकर भी तुम मोहाविष्ट क्यों हुए जा रहे हो?

आप सही कह रहे हैं, भ्राता मुनि जी, मेरे कदम इस रास्ते पर जम नही रहे हैं, किन्तु मैं आप से प्रतिज्ञा करता हूँ कि जिस प्रकार आप मुझे इस समय प्रतिबोध दे रहे हैं—सचेत बना रहे हैं, उसी प्रकार आने वाले जन्मो में भी आप मुझे याद रखें और सचेत बनाते रहें, ताकि मैं धीरे धीरे सही—इस दुर्बलता को मिटा सकू।' मुनि गोविन्द ने आग्रह

भरे स्वर म कहा ।

'मैं तुम्हें बराबर याद रखूंगा और कर्तव्य-पालन के लिये तुम्हें सावधान करता रहूंगा । मुझे विश्वास है कि एक दिन तुम दुर्बलता के घेरे को लांघ कर अवश्य ही इस जीवन-ज्योति को प्रकाशमान बना सकोगे ।'

और दोनो मुनि बाहर से मुनि बने रहे, किन्तु भीतर से रास्ते अलग अलग हो गये । ईश्वरमुनि की साधना निष्काम रूप से चलती रही, किन्तु गोविन्दमुनि ने मन ही मन कामना कर डाली कि उसे उसके सयम आराधन का फल आने वाले जन्म मे ससार के सुख और ऐश्वर्य की उपलब्धि के रूप म मिले ।

यथासमय दोनो मुनि कालगति को प्राप्त हुए । ईश्वर-मुनि का जीव सातवें देवलोक मे देवता के रूप में उत्पन्न हुआ तो उसने अपने ज्ञान मे देखा कि गोविन्द का जीव एक महतरानी के गर्भ म पहुँच चुका है । आखिर भाई का स्नेह था। देवमाया से उसने जन्म होने पर महतरानी के पुत्र को एक कोट्यधिपति सेठ की सेठानी की गोदी मे पहुँचा दिया और सेठानी के नवजात मृतक पुत्र को महतरानी की गोदी मे । गोविन्द ने सयम से जो पुण्य कमाया था, उसके प्रभाव से उसकी कामना भी तो पूरी होनी चाहिये थी ।

सेठ सेठानी को अपने पुत्र-जन्म की परम प्रसन्नता हुई

और उसका वे सुख और ऐश्वर्य के वातावरण में लालन-पालन करने लगे। वह पुत्र अब युवावस्था की देहरी पर खड़ा था।

इसी का नाम था मेहतारजकुमार?

× × ×

देवलोक की वह दिव्य मूर्ति मन्द मन्द गति से मुस्कुरा रही थी और मेहतारजकुमार खिन्न वदन होता जा रहा था।

'क्यों मेहतारज, अब तो तुम्हारी कामना पूरी हो गई है न? जन्म से लेकर इस अवस्था तक तुम सुख और ऐश्वर्य के हिंडोले में झूलते आये हो, अब तो इससे मन भर गया होगा तुम्हारा? अब तो विरक्त होने की इच्छा बना ली है तुमने?'

मेहतारजकुमार मुग्ध-सा खड़ा रहा। सब कुछ जानते हुए भी उससे कुछ भी उत्तर देते न बन पड़ा। वह यह नहीं कह सकता था कि वह प्रतिज्ञा का पालन नहीं करेगा परन्तु उसका मन इसके लिये भी तैयार नहीं था कि वह उन प्राप्त-सुखों को ठोकर मारकर निकल पड़े। वह असमंजस में गोते लगाने लगा। देवता उसके मन की स्थिति समझ गया। उसने मृदुल स्वर में फिर पूछा—

'तो इस समय क्या विचार है तुम्हारा, मेहतारज'

इस मिठास से मेहतारज को भी कुछ कहने का साहस हुआ। वह बोला—

'हे देव, आप मेरे परम उपकारी हैं। मैं आपकी चेतावनी भूलूंगा नहीं, किन्तु कल ही तो मेरा आठ सुकुमार कन्याओं के साथ विवाह होने वाला है, जिनमें से एक तो राजकुमारी है। मैंने अभी संसार का सुख ही क्या देखा है? समय तो अब आ रहा है—आप मुझे एक युग (१२ वर्ष) की अवधि तो दीजिये कि मैं कुछ अपनी कामना पूरी कर सकूं। निश्चय मानिये, फिर मैं सारा मोह छोड़ दूंगा—भोग से त्याग के पथ पर चल पड़ूंगा।'

'संसार की संलग्नता बड़ी जटिल होती है, मेहतारज—इसे मत भूल जाना। मैं तुम्हें एक युग का समय देता हूँ, फिर तो कोई बहाना नहीं बनाओगे न?'

न तो मेहतारज ने कोई उत्तर दिया और न देव ही किसी उत्तर के लिये ठहरा।

× × ×

मेहतारजकुमार के विवाह का दिन था। एक करोड़पति के पुत्र का विवाह—फिर ठाटबाट की क्या कमी? विवाह के उत्सव की शोभा अपूर्व थी। नगर के सारे नागरिक उसे देखने एकत्रित हो रहे थे। मूल्यवान वेशभूषा से

सुसज्जित अश्वारूढ मेहतारज का जब विन्दौला ब…
उसकी साजसज्जा देखते ही बनती थी।

आठ-आठ सुकुमारियों के संग परिणय एवं प्र…
लालसा मे एक ओर जहाँ मेहतारज का मन फूला नहीं…
रहा था तो दूसरी ओर एक अज्ञात भय उसके मन…
कचोट रहा था कि यह सुख-भोग तो उसके लिये ए…
तक ही है और एक युग को बीतते देर ही कितनी…
है ? उसने अपने मन को समझाया कि वह निश्चिन्त…
देवता को समझाने का फिर कोई और रास्ता निकाल…
जायेगा। आखिर देवता भी पराया तो नहीं है। उसने…
मन को मीठे सपनो मे सुला दिया।

× × ×

हास विलास और भोग उपभोग की अट्टालिका…
बारह वर्ष किस प्रकार और कितनी शीघ्रता से बीत…
इसका भान तक उस मेहतारजकुमार को नहीं हुआ। …
धन और मदमस्त जीवन भला इन सबको छोड़कर…
काँटे और पत्थरों की राह चलना मेहतारज को क्यों…
लगता ? किन्तु देवता तो आयेगा ही और क्या…
इसी सोच मे डूबा वह अन्यमनस्क हो रहा था।

देवता तो अपने गोविन्द भाई का हितैषी था, वह
चाहता था कि दोनों भाई भावना के क्षेत्र मे पूरी तर…

ड़ जायें। एक स्वेच्छा से गति करता है किन्तु कभी-कभी
ी को ठोकपीट कर भी गति करानी पड़ती है । मेहतारज
जित पुण्य को भोग रहा है किन्तु कमाया धन बैठे-बैठे
ते रहने से कब तक चलेगा ?

सध्या अभी ढली ही थी और रात का अंधेरा आया
था, मेहतारज अपने कक्ष मे एकाकी विचार-मग्न था ।
का मानस अभी रागरंजित था, अपनी रूपवती गृहिणियो
राग, अपनी सम्पत्ति और प्राप्ति मे राग, अपनी सन्तति
राग और जैसे राग की रागिनी उसके हृदय की वीणा
: सघन रूप से झंकृत हो रही थी। विराग का तो अभी
ी चिह्न तक उत्पन्न नही हुआ था।

इसी समय कक्ष मे एक दिव्य प्रकाश फैला और मेह-
रज समझ गया कि उसकी पुकार आ गई है। अब तो वह
व्य प्रकाश उसे काट खाने वाला और देव कालपुरुष-सा
तीत होने लगा ।

'मेहतारज, विकृति का एक युग बीत गया, अब तो
रकृति का युग प्रारभ करोगे न ?'

वही तरल स्वर, वही प्रेरक उद्बोधन, किन्तु बीज
से फले, धरती बजर और सूखी जो हो रही थी ?

'मेरे भ्राता देव, बारह वर्ष तो बारह क्षण की तरह
ीत गये । कुछ पता ही नही चला कि मैंने कुछ सुख भोगा

सुसज्जित अश्वारूढ़ मेहतारज का जब बिन्दोरा नि[illegible]
उसकी साजसज्जा देखते ही बनती थी।

आठ आठ सुकुमारियों के संग परिणय एवं प्रा[illegible]
सामग्री में एक ओर जहाँ मेहतारज का मन फूला नहीं
रहा था तो दूसरी ओर एक अज्ञात भय उसके म[illegible]
कचोट रहा था कि यह सुख-भोग तो उसके लिए ए[illegible]
तक ही है और एक युग को बीतते देर ही कितनी ल[illegible]
है ? उसने अपने मन को समझाया कि वह निश्चिन्त र[illegible]
देवता को समझाने का फिर कोई और रास्ता निकाल लि[illegible]
जायेगा। आखिर देवता भी पराया तो नहीं है। उसने इ[illegible]
मन को मीठे सपनों में सुला दिया।

× × ×

हास विलास और भोग उपभोग की अठखेलियां [illegible]
बारह वर्ष किस प्रकार और कितनी शीघ्रता से बीत ग[illegible]
इसका भान तक उस मेहतारजकुमार को नहीं हुआ। यौव[illegible]
धन और मदमस्त जीवन भला इन सबको छोड़कर नंगे प[illegible]
कांटे और पत्थरों की राह चलना मेहतारज को क्यों अच्छा
लगता ? किन्तु देवता तो आयेगा ही और क्या कहेगा—
इसी सोच में डूबा वह अन्यमनस्क हो रहा था।

देवता तो अपने गोविन्द भाई का हितैषी था, वह [illegible]
चाहता था कि दोनों भाई भावना के क्षेत्र में बुरी तरह

ुड जायें। एक स्वेच्छा से गति करता है किन्तु कभी-कभी सी को ठोकपीट कर भी गति करानी पड़ती है। मेहतारज र्जित पुण्य को भोग रहा है किन्तु कमाया धन बैठे-बैठे ते रहने से कब तक चलेगा ?

सध्या अभी ढली ही थी और रात का अधेरा आया था, मेहतारज अपने कक्ष मे एकाकी विचार-मग्न था। सका मानस अभी रागरंजित था, अपनी रूपवती गृहणियो राग, अपनी सम्पत्ति और प्राप्ति मे राग, अपनी सन्तति राग और जसे राग की रागिनी उसके हृदय की वीणा र सघन रूप से झकृत हो रही थी। विराग का तो अभी ही चिह्न तक उत्पन्न नही हुआ था।

इसी समय कक्ष म एक दिव्य प्रकाश फैला और मेह-ारज समझ गया कि उसकी पुकार आ गई है। अब तो वह देव्य प्रकाश उसे काट खाने वाला और देव कालपुरुष-सा तीत होने लगा।

'मेहतारज, विकृति का एक युग बीत गया, अब तो रकृति का युग प्रारभ करोगे न ?'

वही तरल स्वर, वही प्रेरक उद्बोधन, किन्तु बीज सै फले, धरती बजर और सूखी जो हो रही थी ?

'मेरे भ्राता देव, बारह वर्ष तो बारह क्षण की तरह ीत गये। कुछ पता ही नही चला कि मैंने कुछ सुख भोगा

भी है । अभी तो मेरे पुत्र पुत्रियां बाल्यावस्था में ही हैं। उन्हें बड़े हो जाने दो—ब्याह लेने दो । एक बार पितामह तो बन जाने दो—फिर संसार को छोड़ना तो है ही। इतना भी क्या अधीरता है आखिर ? मैं वचनबद्ध जो हूँ'—मेहतारज ने फिर एक युग की अवधि की और मांग की ।

देवता ने हार-थककर कहा—

'ठीक है, एक युग की अवधि और देता हूँ, किन्तु वादा करो कि तीसरी बार तुम और अवधि नहीं मांगोगे। ध्यान रखो कि यह दलदल ऐसा ही है जिसमें से पैर निकाल लेना आसान नहीं होता और यदि तुमने अपनी चेतना शिथिल बना दी तो पैर अन्दर और अन्दर धसता ही जायेगा।'

इतना कहकर देव फिर अन्तर्धान हो गया।

× × ×

'मेहतारज, अब तो तुम्हारी कामना पूर्ति में कोई कसर नहीं बची है । संसार का सबकुछ देख और भोग लिया है, तुमने । अब तो शरीर भी जर्जर होने लगा है, कामनाएं भी जर्जर हो रही होंगी । घोषणा करवा दूं मैं नगर में कि मेहतारज मुनि बन रहे हैं ।'

देवता की बात अब भी मेहतारज को नहीं रुच रही थी। कैसा होता है विष्टा का स्वाद कि विष्टा का कीड़ा उसमें

स बाहर निकलना ही नही चाहता है । वह बोला—

'मन यहाँ भरा है अभी—जरा पोतो की बहुओ का मुँह तो देख लू । बस इतनी-सी देर और सहन कर लो, देव, फिर मुनि तो बनूगा ही ।'

जिसे वितृष्णा मे फसे रहने पर विचार नही—अपने वचन तोडने पर भी जिसे लज्जा नही, वह तो धृष्ट हो गया है—यह सोच देवता कुपित हो उठा और उग्र स्वर मे बोला—

'क्यो अनमोल मोती सा यह मानव-जीवन व्यर्थ ही में नष्ट कर रहे हो मेहतारज ? कर्त्तव्यहीनता और पतन की कुछ सीमा तो होनी चाहिये । मुझे लगता है, सीधी तरह से तुम्हारा यह चिकना राग तुम्हारे मन से मिटने वाला नही है ।तो स्वर्ण का स्वरूप न बिगडे—इसके लिये मैं हथौडे की चोट भी दूगा ।'

और देवता का प्रकाश विलुप्त हो गया । तब चारो ओर अधकार छा गया और उससे भी घना अधकार छा गया मेहतारज के मानस-पटल पर कि अब क्या होगा—देवता न जाने क्या करेगा ? कसा हथौडा होगा और कैसी उसकी चोट होगी ?

× × ×

मेहतारजकुमार सायकाल रथ में बठकर भ्रमण करने

जा रहा था। अभी उसका रथ मुख्य बाजार के बीच में होकर गुजर ही रहा था कि एक वयोवृद्ध मेहतर और मेहतरानी ने अपनी मले की टोकरिया एक ओर रखकर घोडे की रास पकड ली। मेहतारज हक्का-बक्का होकर देखता ही रह गया कि यह क्या मामला है ? उसने रथवान से रथ रोकने को कहा और बाहर झाकते हुए उसने गुस्सा दिखाकर डांटा—

'शर्म नही आती तुम लोगों को जो बीच बाजार बिना कारण मेरा रथ रोककर खडे हो गये हो ?'

मेहतर और मेहतरानी मेहतारज के बिल्कुल समीप चले आये और रो-रो कर जोर-जोर से कहने लगे—

'तू नही जानता कि तू हमारा बेटा है। एक देवता ने ऐसी माया की कि वे तुझे हमारे घर से सेठ के यहा चुरा ले गये और उनका मरा हुआ लडका हमारे यहा डाल गये। हमारे फूटे भाग कि तेरे जैसा बेटा होते हुए हम निपूते कहलाते रहे। अब तो हम तुझे छोडेगे नही। इस रथ को अब अपने इन माता-पिता के घर की ओर मोड दो—'

सैकडो नागरिक इकट्ठे हो गये। एक अजीब सन्नाटा छा गया। मेहतारज को काटो तो खून नही। उससे कुछ बोलते ही नही बना। एक करोडपति के लडके को भंगी कहता है कि यह मेरा लडका है—यह कैसी बात है ?

एक समझदार नागरिक ने आगे बढ़कर मेहतर को

पूछा—'ऐसी बेतुकी बात तू कैसे कहता है ? जानता नही, ये सेठ के बेट और राजा के जवाई हैं। ये तेरे बेटे हैं—इसका क्या सबूत है तेरे पास ?'

मेहतर ने छाती ठोक कर कहा—

'मुझे यह तथ्य उस देवता ने बताया है, जिसने जन्म के समय लडको की अदला-बदला की थी—'

तभी आकाश में बादलो की घडघडाहट जैसी कर्कश ध्वनि हुई और उस देवता ने मेहतर की बात की पुष्टि की। सभी लोग एक दूसरे का मुह देखते रह गये और मेहतारज तो सारी दवमाया को समझ कर अपने प्रति बीभत्स ग्लानि से भर उठा।

सारे जन-समुदाय के बीच ही उस देवता ने खुले तौर पर मेहतारज से पूछा—

'कहो मेहतारज, अब तो ससार से तुम्हारा मन भर गया है अथवा अभी भी कोई और कामना बाकी है ? तृष्णा का कोई अन्त नही है, किन्तु तुम्हारे लिये मुझे वह अन्त लाना पडा है। अब तो दीक्षा के लिये तैयार हो न ?'

मेहतारज ने हाथ जोडकर इतना ही कहा—

'मुझे मेरे मोह पर अपार खेद है और इसका प्रायश्चित्त करने के लिये इतनी कठोर सयम-साधना करूगा कि

भ्राता, आप भी मान जाओगे।'

इतना सुनते ही देव ने अपनी दैविक शक्ति एव युक्ति पूर्ण ढग से अपने भाई की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुन ज मानस मे प्रतिष्ठित कर दिया और मेहतारज भी पूव प्रतिज्ञानुसार पूर्ण सयम माग की ओर बढ चले ?

× × ×

मुनि मेहतारज ने सयम और तप की वह कठोर साधना प्रारभ की कि सभी आश्चर्य करने लगे। उन्होने सकल्प कर लिया कि जितना मैल इतने वर्षों मे उन्होंने इकट्ठा किया है उसे वे उतने ही महीनो में धो लेगे। एक-एक मास का अनशन रखते—फिर एक दिन हल्का-सा भोजन करते और दूसरे दिन से फिर एक माह की तपस्या का व्रत ले लेते वे कृशकाय होते हुए निरतर पुण्यात्मा बनते जा रहे थे।

एक दिन मास भर की तपस्या पूरी होने पर पारणे के निमित्त भिक्षा लेने मुनि मेहतारज यत्र-तत्र भ्रमण कर रहे थे। इतने मे एक वृद्ध स्वर्णकार ने उन्हें देखा तो दौडकर अपने घर भिक्षा ग्रहण करने हेतु भक्तिपूवक निवेदन किया। उस समय वह स्वर्णकार महारानी के लिये मूल्यवान मोतियों का एक हार बना रहा था। मूल्यवान मोती और सोने के टुकडे उसकी पीठिका पर यत्र-तत्र बिखरे पडे थे, वह उन्हें वसे ही छोडकर भक्तिवश दौड पडा था।

वह मुनि को लेकर अपने मकान के भीतरी भाग मे गया और मुनि को आहार बहराने लगा। इस बीच स्वर्णकार का पालतू मुर्गा आकर पीठिका पर से दान समझ उन मूल्य-वान मोतियों को चुग गया और पख फड फडाकर वापस बाहर चला गया। रसोई की एक बारी से मुनि ने मुर्गे को मोती चुगते हुए देख लिया था किन्तु स्वर्णकार की नजर वहा नही पड रह थी।

मुनि आहार ग्रहण करके यतनापूर्वक बाहर निकलकर अपने स्थान की ओर बढ चले। थोडी देर मे स्वर्णकार जब बाहर आया और उसने पीठिका पर मूल्यवान मोती नही देखे तो एकदम घबरा उठा। ऐसे मूल्यवान मोती कही अन्यत्र प्राप्य नही थे और उनकी हानि के लिये राजा कैसा और कितना दड दे—उसकी कल्पना से ही वह वृद्ध धूजने लगा।

तत्क्षण उस वृद्ध के मन मे आया कि इस समय मुनि के सिवाय कोई आया नही, इसलिये यह काम मुनि ने ही भ्रष्ट होकर किया है। वह वहीं से भागा और किसी तरह मुनि को वापस वहा लेकर आया। घर के भीतर ले जाकर उसने पूछा—

'मुनि होकर भी आपकी ममता छूटी नही है। मेरे मूल्यवान मोती आप ही ने लिये हैं। जल्दी से निकाल दीजिये या जहां छिपाये हों, बता दीजिये, वरना मेरी तो मौत होगी

ही किन्तु आप भी नही बच सकेंगे।'

वृद्ध भय और क्रोध से अवस हो रहा था। मुनि ने सोचा कि यदि वे सत्य कह देते हैं तो पागल बना यह वृद्ध अभी ही मुर्गे की घात कर देगा और उससे उनका पहला अहिंसा का महाव्रत खंडित होगा। इसलिये उन्होंने मौन ही रहने का निश्चय किया।

'आपकी ममता नही छूटी, किन्तु लगता है, आपका झूठ भी नहीं छूटा है। अब भी सच कह दो और मोती दे दो—' वृद्ध ने आखरी आग्रह किया।

मुनि को तो मौन ही रहना था, वे मौन ही रहे। वृद्ध ने सोचा—बिना कठोरता वे मुनि फूटेंगे नही। उसने मुनि को मकान के भीतर चलने को कहा। वह मकान में होकर मुनि को पीछे के बाडे मे ले गया। वहां एक भीगे हुए चमडे का टुकडा रखा था। उसने उस गीले चमडे से मुनि मेहतारज का सिर कसकर बाध दिया और कडी धूप मे उन्हे खडा कर दिया।

मुनि के महीने भर की तपस्या—पारणा भी नही हो सका और यह कठिन यातना! ज्यो-ज्यो कडी धूप के प्रभाव से गीला चमडा सूखकर सिकुडने लगा, त्यों-त्यों मुनि का सिर भिचने लगा और मस्तक की नसें फटने लगी। एक प्राणी की रक्षा के लिये उस अपार वेदना को भी वे शान्ति

पूवक सहने लगे । वृद्ध स्वर्णकार खड़ा प्रतीक्षा करने लगा कि मुनि मूल्यवान मोतियो के बारे मे अब बतावें—अब बतावें ।

प्रतीक्षा से जब वह थक गया तो बाहर चला गया । उसके आश्चर्य का ठिकाना नही रहा कि वे सभी मूल्यवान मोती मुर्गे की बीट मे निकले हुये पड़े थे । उन मोतियों को देखते ही वह भीतर भागा कि मुनि को यातना मुक्त कर दे और उनसे अपने शका भरे दुष्कृत्य के लिये क्षमा मागे ।

किन्तु यह क्या ? मूल्यवान मोती तो मिल गये थे, मगर अनमोल मोती जा चुका था । वृद्ध स्वर्णकार वहीं सिर पकड कर बैठ गया । वह क्या जाने कि वह अनमोल मोती गया नही, अपने विकास के अन्तिम निखार को पाकर अमर बन चुका था ।

अंगूठी

प्रतिदिन की तरह ज्यों ही षट्खण्डाधिपति चक्रवर्ती भरत महाराज स्नान-मज्जन से निवृत हो शृंगार करने शीशमहल में प्रविष्ट हुए, उनके सुंदर शरीर की सहस्रों प्रतिच्छायाएं उनस्वच्छ दर्पणों मे प्रतिबिम्बित होने लगा। शीशमहल की चारो दीवारो, छत व फर्श पर समूचे रूप में दर्पण खंड जडे हुए थे और प्रत्येक दर्पण खंड में भरत महाराज की आवृति दिखाई दे रही थी।

जैसे ज्ञानी के ज्ञान से अव्यक्त इस जगत् में कोई स्थल नहीं होता, उसी तरह शीशमहल का कोई स्थल उस समय उस चित्ताकर्षक मूर्ति के प्रतिबिम्ब से रहित नहीं था। ऊपर, नीचे, तिरछे—सभी दर्पण उस भव्य विभूति को अपने अंक मे समाकर मानो अपार हर्ष से विहसित हो रहे थे।

भरत महाराज विशाल शृंगार दर्पण के सम्मुख जाकर खड़े हुए और विधिवत् शृंगार करने लगे। उन्होंने पहले

स्वर्णखचित बहुमूल्य वस्त्र धारण किये, उन्हे अपनी कान्तिमय देह की अनुपम सुन्दरता पर गर्व होने लगा।

फिर उन्होने हीरक हार पहिना, सिर पर रत्न-जटित मुकुट रखा तथा अन्य अलकार यथास्थान धारण किये। अब तो सौदय शोभा का कहना ही क्या ? अनुपम वस्त्रा-भूषण से सुसज्जित स्वय देवेन्द्र भी इतना सुन्दर दिखाई न देता होगा। अपना मनोहारी रूप स्वय ही देखकर वे फूले न समाए।

वे विचार करने लगे—

'सौदय की एक झलक भी अपूर्व होती है। सुन्दर शरीर पर सुन्दर शृगार की सज्जा देखते ही बनती। सभवत मेरे सौदय का इस ससार मे कोई भी सानी नही। जब मैं राज्य सभा-मडप मे प्रविष्ट होऊगा—एक दिव्य ज्योति-सी चमक जायेगी, दर्शक अपनी सुध-बुध खो विमुग्ध-भाव से मेरी ओर एकटक देखते ही रह जायेंगे। निश्चय ही मेरे समूचे सुन्दर, सुकोमल एव सुदशनीय तन की आभा अद्वितीय ही होगी '

अचानक एक अगुली मे से हीरे की अगूठी निकलकर नीचे गिर पडी। उनकी विचारशृखला टूट गई और सीधी उनकी दृष्टि उस अगुली पर पडी। अगूठी गिर जाने से अलकार शून्य वह अगुली एकदम शोभाहीन-सी प्रतीत होने लगी।

विचारधारा की दिशा ने तुरन्त ही पलटा खाया, वह अब विपरीत दिशा में बह चली—

'अरे, अगूठी के गिर जाने से यह अगुली कितनी विरूप बन गई है ? अगूठी क्या निकल गई है कि जैसे इसकी सुन्दरता ही लुप्त हो गई है । जो अगुली अगूठी के सयोग से एक क्षण पूर्व ही सुन्दर और मनोहर दिखाई दे रही थी, वही इस समय अगूठी के अभाव में कितनी असुन्दर हो गई है ?

तो क्या मेरा शरीर स्वय सुन्दर नहीं ? क्या वस्त्राभूषण का सयोग ही उसे सुन्दर बना रहा ?

विचारमग्न अवस्था में उन्होंने हीरक हार उतार लिया, रत्नजटित मुकुट को अलग कर दिया और एक एक अलकार को हटाकर दूर रखते गये और तब अलकार हीन अपने शरीर तथा उसके अग-उपागो को दर्पण में निरखते गये।

यह क्या ? अब वह सौन्दर्य कहाँ चला गया ? अब तक दिखाई दे रही सुन्दरता तो आखों को धोखा मात्र थी। यदि शरीर वस्त्राभूषण के सयोग से ही सुन्दर दिखाई देता है तो स्वय शरीर में सुन्दरता कहाँ है ? शरीर स्वय सुन्दर नहीं तो वस्त्राभूषण ही उसकी सुन्दरता को क्या बना देंगे ? वस्त्राभूषण की सुन्दरता भी नश्वर है और इस देह की सुन्दरता भी, क्योंकि स्वय देह नश्वर है । जो सुन्दरता नश्वर है, वह सुन्दता ही कैसी ? सुन्दता तो वह है जो कभी मिट नहीं,

हमेशा टिकी रहे ।

तब नश्वर वस्त्राभूषण और नश्वर शरीर म अमर
सौन्य कहाँ से प्राप्त होगा ? नश्वर और अमर का मेल
ही क्या ? जो नश्वर है, वह अमर नही और जो अमर है,
वह कभी नाश नही होता। नाश होने वाला है, वही नश्वर है।

जैसे अगूठी के गिर जाने से अगुली थी, शोभा और
सौन्दय-हीन हो गई, वैसे ही आज सुन्दर दिखाई देने वाला
यह शरीर भी एक दिन अशक्त, जजर और कान्तिहीन हो
जायेगा। उसके बाद यह वतमान सुन्दरता मेरे लिये किस
काम की रह जायेगी ?

ससार के सभी पदार्थ पौद्गलिक हैं और पुद्गल विनश्य
स्वभाव वाला होता है, किन्तु इन नश्वर पदार्थों में जान फूकने
वाला अनश्वर तत्त्व है चैतन्य। शरीर है तो इस चैतन्य के बल
वरना मृत शरीर को एक क्षण भी अपने पास कौन रखना
चाहता है ?

भरत महाराज गहरे और गहरे सोचते चले जा रहे थे—

'मनुष्य के भ्रम का कोई पार नही है कि वह अपनी
सुन्दरता को ही चिरस्थायी मान लेता है और उसी की
सज्जा मे सुख का आभास पाने लगता है। उबटन,
स्नान, मजन, शृगार आदि से देह को सुन्दर-से-सुन्दर
बनाने की चेष्टा करता है। किन्तु वह भूल जाता है कि

यह सुदरता तो नाशवान है और इसे भी वह याद नहीं रखता कि इस के मूल मे जो चतन्य है, उसकी सुदरता को निखारने का यत्न किया जाये, क्योकि वही अतंतम की सुंदरता अनश्वर होती है'

'मेरा मन भी वाह्य सुख और वाह्य सौन्दय म भटक रहा था, परन्तु इस समय जो मैं गहरे उतर कर अपने भीतर झाक रहा हूँ तो एसा प्रतीत हो रहा है कि मेरी दृष्टि उस अपूव आत्मिक सौन्दर्य को खोज लेगी। अगूठी के गिर जाने के बाद अलकार-शून्य इस अगुली ने मुझे जिस सत्य का दशन कराया है, वह मुझे चिरन्तन सत्य तक अवश्य पहुँचायेगा।'

'अन्धकार में ही प्रकाश का श्रेष्ठ बोध होता है किन्तु पहले अन्धकार को भी समझना परम आवश्यक है, क्योंकि उसी से प्रकाश का महत्त्व समझ मे आयेगा। शरीर की वास्तविक स्थिति से परिचित होने का अथ ही आत्मिक-स्वरूप की ओर गति करना है। आज मैंने अन्धकार को समझा है तो अब मैं प्रकाश की ओर अवश्य अग्रसर बनूगा'

'इस अगूठी ने मुझे जागृत बनाया है, आत्मपरिचय के लिए उद्यत किया है। अब मुझे शरीर की नश्वर सुन्दरता मे आत्मा का विमल सौन्दय एक स्फटिकमणि की भांति स्पष्ट दीखने लगा है। मैं इस समय जडता से पृथक् चतन्य

की गहन अनुभूति कर रहा हूँ। म अवश्य ही शरीर के ममत्व को त्यागकर अन्तर्तम के अमल सौन्दय को पहिचानूँगा..'

'आज का दिन मेरे लिये सबसे ऊँचा दिन है। मुझे अपना सच्चा स्वरूप धीरे-धीरे स्पष्ट दिखाई देने लगा है। मेरी चेतना—मेरी आत्मा, यह क्या? हलकी महसूस होती हुई उर्ध्वगामी हो रही है। अहा, मुझे अवर्णनीय दिव्य आनन्द की अनुभूति हो रही है'

अनित्यभावना के उत्कृष्ट चिन्तन की सरणी मे भरत महाराज वास्तव मे उर्ध्व और उर्ध्व उठते गये। उनका शरीर शीशमहल के शृगार-दर्पण के सम्मुख ही यथावत् खडा था किन्तु उनकी चेतना अमित ऊँचाइयो को पार करती हुई चली जा रही थी।

× × ×

राजसभा के मडप में सभी अधीनस्थ राजा, महाराजा यथासमय यथास्थान बैठ चुके थे। चक्रवर्ती की सम्पूण शोभा और सज्जा मे वहाँ कोई अन्तर नही था किन्तु सभी प्रतीक्षारत हो रहे थे कि भरत महाराज अभी तक मडप मे क्यो नहीं पधारे हैं? उनका सिहासन मात्र ही वहाँ रिक्त था।

'चिन्ता का विषय बन गया है कि भरत महाराज

हमेशा की तरह अभी तक मडप में क्यो नही पधारे हैं। प्रधान अमात्य कृपया पता करवावें।' एक राजा ने सुझाव दिया।

प्रधान अमात्य ने सभा को बताया—

'चक्रवर्ती महाराज स्नान–मजन के उपरान्त अपने शीशमहल मे पधारे थे। शीशमहल मे जाने की आज्ञा नही है। किन्तु मैं स्वय उधर जाकर ज्ञात करता हूँ, आप निश्चिन्त रहे।'

अभी प्रधान अमात्य ने शीशमहल की ओर जाने के लिये पांव बढाया ही था कि आकाश मे देव-दुदुभि का स्वर गूंज उठा, शीशमहल की ओर से जय-जय का नाद सुनाई दिया तथा चारो ओर पुष्प-वर्षा होने लगी। सभी आश्चर्य में डूब गये कि इस दैविक घटना का क्या अर्थ है? प्रधान अमात्य भी विस्मित होते हुए शीशमहल की ओर तेजी से पग बढ़ाते चल पड़े।

× × ×

'सभाजनो, देवताओ द्वारा यह सत्कार अपने भरत महाराज का ही हो रहा है। अनित्यभावना की उत्कृष्ट श्रेणी में पहुँचकर उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया है। यह दुदुभि, यह जयनाद और यह पुष्प-वर्षा केवली भरत का

कैवल्य-महोत्सव है। अब भरत छः खंड के महाराज से सारे जगत् के महाप्रभु हो गये है'—प्रधान अमात्य ने शीघ्रता से लौट कर सभा को सूचित किया।

सभी विस्मय के अतिरेक से एक-दूसरे की आकृति निहारने लगे। शीशमहल मे केवलज्ञान की उपलब्धि यह स्वय मे एक आश्चर्य है। शीशमहल तो वह स्थान है, जहाँ इस शरीर को सजाया और सवारा जाता है, वहाँ आत्मा का सर्वोच्च शृगार भरत महाराज को कैसे प्राप्त हो गया? सयम, तप या किसी व्रत की ऊपरी आराधना नही करते हुए भी उनकी आन्तरिक आराधना इतनी उच्च कोटि की बन गई कि वे भावात्मक सर्वोत्तम साधु ही नही, एकदम केवली ही बन गये—सभी के हृदय हर्ष और श्रद्धा से परिपूरित हो गये थे।

अकस्मात् भरत महाराज ने सभा मडप मे प्रवेश किया, किन्तु सिंहासन के पास नही गये। अब भला सिंहासन की ओर वे जाते भी क्यों? सिंहासन के योग्य कोई साज-सज्जा तब उनके शरीर पर नही थी। मुकुट के स्थान पर केशलुचित नग्न सिर था और पदत्राण नही, पैर भी नग्न थे। वह तब भरत चक्रवर्ती नही, साधु भरत थे, केवली भरत थे। यद्यपि वे मनोरम वस्त्राभूषण को त्याग चुके थे किन्तु उनके मुखमडल पर एक अलौकिक तेज प्रदीप्त हो रहा था जो

बाहर से नही, उनके अन्तस मे फूट रहा था।

सभा मे जयनाद के पश्चात् अतुल शान्ति छा गई। सब खडे हुए सो खडे ही रहे, क्योंकि भरत महाराज स्वयं भी खडे ही थे। उन्होने सभाजनों को उद्बोधित करते हुए धीमी किन्तु गभीर भाषा मे कहा—

'मनुष्य अपने शरीर को ही सर्व सुखो का स्रोत समझता है और सुदरता का मूल भी, किन्तु यह भ्रम है। मैं भी भ्रम मे था, किन्तु मेरी अगुली से अचानक अगूठी गिरी तब वह मुझे श्रीहीन लगने लगी। मैं उसकी गहराई में उतरता गया, मुझे सत्य के दर्शन हुए, आत्मा के सौंदर्य की अनुभूति होने लगी। भावना की आन्तरिकता ने कुछ ही क्षणो मे मुझे कहाँ-से-कहाँ तक पहुँचा दिया—यह आपके सामने है।

'भावना के बल पर अनित्य की आराधना को छोड़िये और नित्य की उपासना कीजिये परम निर्मलता प्राप्ति का लक्ष्य तब समीप, और समीप आता ही जायेगा—किस गति से ? पर इसकी कोई सीमा नहीं है। इसलिये हे भव्यो, अपने चैतन्य को जगाइये'

भरत केवली धीरे धीरे मडप से बाहर चले गये। तब भी एक दिव्य आभा और दिव्य वाणी से प्रभावित बने सभाजन चमत्कृत-से खडे ही रहे।

स्वर्ण-मुद्रा

'देखो—एक बात मुझे ध्यान में आई'—सरस्वती की
ाखों में एक चमक दिखाई दी।

'वह क्या ?' कपिल उत्सुक हुआ।

'शायद अपने नगर के राजा ने एक नई परम्परा
ुरू की है न ?'

'मुझे नहीं मालूम—'

'ऐसा है कि प्रातःकाल जो ब्राह्मण सबसे पहले राजा
ो आशीर्वाद देता है, उसे राजा एक स्वर्ण-मुद्रा दान में
ता है।'

'तब तो यह आशाभरी बात है !'

'है तो सही—'

'फिर क्यों नहीं मैं जल्दी उठकर कल सुबह सबसे
हले राजा को आशीर्वाद देने के लिए पहुँच जाऊं और स्वर्ण-
ुद्रा प्राप्त कर लूं ?'

अन्न का एक भी दाना जिस घर में नहीं हो, स्वर्ण मुद्रा की कल्पना भी बड़ी सुखद होती है। सोचते-सोचते दीनता की पीड़ा और स्वर्ण मुद्रा-प्राप्ति की सम्भावना दोनों ने कपिल और सरस्वती दोनों को बलात नींद की गोदी में पटक दिया।

× × ×

एक नींद आई न आई—प्रात काल होता जान कपिल पुरोहित उठ खड़ा हुआ। उसे आशंका हो रही थी कि कहीं तनिक भी विलम्ब हो गया तो स्वर्ण-मुद्रा कोई अन्य ब्राह्मण ले जायेगा। राजमहल जल्दी पहुँच जाने के लिये वह अपने घर से निकल पड़ा।

मध्य रात्रि के निविड़ अंधकार में वह चला जा रहा था। वर्तमान की पीड़ाओं से उसका मुक्त मन सुखद कल्पनाओं के अथाह सागर में गोते लगा रहा था कि प्राप्त स्वर्ण-मुद्रा से वह किस प्रकार अपनी प्रेयसी को प्रसन्न करने का यत्न करेगा? उसका शरीर भी बड़ी स्फूर्ति से काम कर रहा था, क्योंकि भविष्य की सुखमय आशाओं ने उसमें एक नया बल भर दिया था।

एक स्वर्ण-मुद्रा—छोटा-सा पीला गोल टुकड़ा, किन्तु वह भी कितना मूल्यवान है उसके लिये और विशेष रूप से उसके कष्टों से भरे वर्तमान के लिये। वह कल्पना के संसार

में मगन बना मन-ही-मन प्रसन्न होता हुआ आगे बढ रहा था।

अचानक उसकी कल्पना की शृंखला टूट गई। चलते-चलते यकायक वह निस्तब्ध होकर खडा रह गया। देखता क्या है कि उसके सामने घनान्धकार में एक काली-सी मूरत खडी हुई है और उसके हाथ मे नगी तलवार चमक रही है। वह किंकर्तव्य-विमूढ होकर निश्चेष्ट खडा रहा।

'कौन हो तुम और इस अधेरी आधी रात मे क्या अपराध करने का इरादा है तुम्हारा ?'—एक कडकडाती आवाज ने कपिल से पूछा किन्तु भय के मारे कपिल के मुँह से एक शब्द भी नहीं फूटा।

'क्यो रे धूर्त, बोल भी नही रहा है ?'

आखिर कपिल ने गिडगिडाते हुए सफाई दी—

'मैं न तो धूर्त हूँ और न मेरा अपराध करने का ही कोई इरादा है। मैं तो गरीब ब्राह्मण हूँ और एक स्वर्ण-मुद्रा की आशा मे राजमहलो मे राजा को आशीर्वाद देने जा रहा हूँ।'

'बडा सीधा बन रहा है और झूठ ऊपर से बोल रहा है कि कोई अपराध नही करने जा रहा है ? आशीर्वाद देने का समय तो प्रात काल है, मध्यरात्रि नही।'

कपिल को अब ध्यान मे आया कि स्वर्ण-मुद्रा प्राप्त

करने की तत्परता से वह बड़े सबेरे की बजाय आधी रा को ही उठकर आ गया है। अब तो वह प्रहरी की धमकं से और ज्यादा डर गया।

'आप विश्वास करें या न करें, मैं झूठ नहीं बो रहा हूँ। दीनता की पीडा से मै इतना उतावला हो गय कि मुझे खुद को भान नही, मैं आधी रात को ही घर स्वर्ण-मुद्रा के लिये चल पडा।'

प्रहरी ने कठोरता से कहा—'तेरा कथन विश्वास के योग्य नही—मैं तुझे जाने नही दे सकता। न जाने तू कोई लम्पटी पुरुष हो और कोई अपराध कर बैठे तो मैं दोषी बन जाऊ।'

उसने अपने साथी से कहा—'इसे बन्दी बना लो और कारागृह मे बन्द कर दो। प्रात काल राजा के सामने प्रस्तुत कर देंगे इसे—'

कपिल ने बहुत कुछ कहा-सुनी की किन्तु प्रहरी ने एक न सुनी। वह बन्दी बना लिया गया। कहा तो स्वर्ण मुद्रा की आशा और उसमे प्रेयसी को सुखी बनाने की कल्पना और कहाँ उसके बदले मे कारागृह की श्रृंखलाएँ? पुरुष सोचता क्या है और होता क्या है?

× × ×

'महाराज, रात को पहरा देते हुए मैंने इस धूर्त पुरुष को पकड़ा है। यह आधी रात को किसी गभीर अपराध की टोह मे घूम रहा था और जब पकड़ा गया तो झूठ-मूठ के बहाने बनाने लगा—'प्रहरी ने प्रात काल कपिल पुरोहित को राजा के सामने प्रस्तुत किया।

राजा ने प्रहरी के अभियोग को सुना और एक गहरी-सी नजर कपिल के मुख पर डाली तो स्पष्ट हो गया कि यह मनुष्य अपराधी नही हो सकता है। फिर भी निर्णय और न्याय करना राजा का कर्तव्य था।

उसने मीठी आवाज मे बन्दी से पूछा—

'क्या नाम है तुम्हारा ?'

'देव, मुझे कपिल कहते हैं।'

'तब तुम ब्राह्मण होकर आधी रात को अधेरे मे किस प्रयोजन से घूम रहे थे ? कोई भला आदमी तो ऐसे समय घूमता नही है।'

'महाराज सत्य कह रहे हैं किन्तु आज्ञा दें तो मैं अपना कथन भी निवेदन करू।'

'अवश्य, नि सकोच कहो—'

तब कपिल (ब्राह्मण) ने अपनी दरिद्रता की करुणा-पूर्ण वास्तविक गाथा कह सुनाई और कहा—

'कितनी भयंकर दीनता छाई हुई है मेरे घर में ? कितने दुखी हैं मेरे परिवार जन ? जब राजा ने यह अवसर दिया है तो क्यो नही ऐसा कुछ मांगू कि यह दीनता और दुख सदा सदा के लिये मिट जाये

'तो एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ क्यों न माग लू ? सारे परिवार के लिये दीर्घकाल तक निर्वाह का प्रबन्ध भी हो जायेगा और सरस्वती का पाणिग्रहण भी सम्पन्न कर लूगा . बस यह माग ठीक है

'किन्तु जब एक हजार स्वर्ण मुद्राओ का व्यय हो जायेगा तब तो फिर दीनता इसी तरह आ घेरेगी, यही पीडा और यह दुख फिर छा जायेगा

'क्यो नही फिर राजा का सारा राज्य ही मांग लू, फिर तो यह दीनता और पीडा कभी भी मुझे सता नहीं सकेगी । सदा सदा के लिये सुखी हो जाऊगा मैं और निश्चिन्त हो जायेगा मेरा परिवार

कपिल एक ही धारा मे बहा जा रहा था । अचानक उसके ज्ञान ततुओं को एक झटका-सा लगा और उसकी विचार धारा ने दिशा बदल दी ।

उसने सोचना शुरू किया—

'अरे, मैं यह क्या इच्छा कर रहा हूँ मने तो दुष्टता

ग्रौर नीचता की सीमाए तोड दी हैं जो राजा दिल खोल-कर उदारतापूर्वक मेरी इच्छा पूरी करने के लिये तैयार हो गया, मैंने उसका ही भयकर अनिष्ट करने का विचार कर लिया लज्जा आनी चाहिये मुझे ।

'धिक्कार है मुझे जो मैं राजा के राज्य का ही अपहरण करने की इच्छा कर बैठा ! खूब सोचा मैंने भी —जो भिक्षुक है वह राजा बन जाये और वह भिक्षुक स्वय राजा को ही भिक्षुक बना दे, क्योकि उसने भिक्षुक को उदारता दिखाई है '

'ससार मे मनुष्य कितना स्वार्थी है कि वह अपने स्वार्थ के आगे दूसरो के हित को एकदम भूल जाता है । स्वार्थ की आग मे वह अपनी सारी गुण शीलता, सारी सज्ज-नता को भी स्वाहा कर देता है.. और तो और अपनी आत्मा को भी उसमे क्षत–विक्षत बना डालता है '

'आज मैं भी स्वार्थ के वशीभूत होकर अपनी आत्मा को कितनी गिरा बैठा ? मैं पथभ्रष्ट हो गया, किन्तु अब और नही गिरूगा, '

'जीवन उत्थान के लिये है और मैं अपनी श्रेष्ठ भाव-नाओं के बल पर इस जीवन को अवश्य और तेजी से उत्थान-मार्ग की ओर ले चलूगा '

कपिल के हृदय मे पहले विचारों का द्वन्द्व हुआ, किन्तु

विजय सद्विचारों की ही हुई। वे अशोक वृक्ष के नीचे उसी तरह बैठे बैठे भी भावना के क्षेत्र मे निरन्तर ऊपर और ऊपर उठते ही चले गये। अपनी आत्मा के प्रति धिक्कार ने उनके मैल को कुछ ही क्षणों मे धो डाला। ज्योंही समग्र निर्मलता की स्थिति उनके अन्तस् की बनी कि उन्हें वहां सर्वश्रेष्ठ ज्ञान–केवलज्ञान की उपलब्धि हो गई।

कपिल ब्राह्मण, कपिल केवली बन गये।

× × ×

'महाराज, विचित्र घटना घटित हो गई। मुझे तो अभी भी अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा है—' दिग्मूढ बने उस सेवक ने भाग कर राजा को सूचना देनी चाही।

'बात तो बता, मूढ !'

'आपने उस कपिल ब्राह्मण को मेरे साथ भेजा था न, वह तो अशोक वृक्ष के नीचे बैठा-बैठा ही कुछ-का-कुछ हो गया, स्वामी !'

राजा चिन्तातुर हो बैठा, उत्सुकता से उसने पूछा—

'बताता क्यों नहीं कि उसे क्या हो गया है ? क्या वह अचेत तो नहीं हो गया ?'

'नहीं महाराज, नहीं। वह अपने विचारों में खोया

सोया वठा ही था और मैं उसे पुन अपने साथ आपके समक्ष लाने की प्रतीक्षा कर रहा था कि अचानक आकाश से स्वर्ण पुष्पो की वर्षा होने लगी, देवताओं के झुड आकर कपिल के चरणो मे झुकने लगे और एक दिव्य प्रकाश वहाँ चारो ओर फैल गया है ।'

यह कहकर उस सेवक ने प्रमाणस्वरूप एक स्वर्ण-पुष्प राजा को भेंट भी कर दिया जो वह अपने साथ लेता आया था ।

राजा ने गभीरता से सोचा और वह समझ गया । जो भावना के क्षेत्र मे उच्चतम विकास करके कपिल देवेन्द्र का भी पूज्य बन गया है, उसकी पूजा करने मे अब नरेन्द्र को कैसा सकोच ? उसे तुरत उनकी सेवा मे जाना ही चाहिये ।

राजा तुरन्त अपने सामन्तो, सेवकों के साथ अपने उद्यान की ओर चल पडा ।

× × ×

देवेन्द्र और नरेन्द्र, देव और नर-नारी कपिल केवली की सेवा मे उपस्थित थे और कपिल केवली धर्मोपदेश दे रहे थे—

'मनुष्य की प्रगति का मूल उसकी अपनी ही भावना

मे रहा हुआ है । रूढ़ आचरण से जो दूरी वह युगों तक
भी पूरी नही कर पाता, भावना की उत्कृष्ट श्रेणियों में वह
उसे कुछ ही पलो मे पूरी करके सर्वोच्च स्थान तक पहुंच
जाता है ।

सभी उनके देदीप्यमान तेज से प्रभावित हो चित्र
वत् बैठे थे ।

१६

पूर्णिमा की चाँदनी रात समुद्र तट पर भ्रमण करते-करते न जाने कब बीत गई—इसका भान हलकुमार को तब हुआ जब ऊषा ने अपने प्रियतम सूर्य की अगवानी में चारों ओर सलज्जता की लाली बिखेर दी। हलकुमार ने ज्यों ही हार पहिन अपने सफेद साथी पर सवारी की कि वह हवा से बातें करने लगा।

हार और हाथी—ये दोनों विलक्षण वस्तुएँ महाराजा श्रेणिक ने अपने जीवनान्त के समय राज्याधिकारी कुणिक को न देकर अपने छोटे पुत्र हलकुमार को दी थी। हार पहिन कर जब वह उस हाथी पर बैठता तो पल भर में उड़ता हुआ हाथी उसे सुदूर देशों का सहज ही भ्रमण करा देता था।

इधर सूर्योदय हो रहा था कि हलकुमार अपने नगर में पहुँचा। अपने महल के उद्यान में प्रवेश करते ही कुणिक सामने मिल गये। हलकुमार ने अपने हाथी से नीचे उतर

कर अपने बड़े भाई और सम्राट् को प्रातःकालीन वन्दन किया। अमूल्य हार को धारण कर श्वेत गज की पीठ पर उड़ने भरने वाले अपने छोटे भाई के दोनों साधनों को प्रत्यक्ष सामने देखकर उन्हें रानी का कथन स्मरण हो आया कि ये साधन राज्याधिकार में और वह भी सम्राट और साम्राज्ञी के पास ही सुशोभित होते हैं अन्य के पास नहीं, कुणिक ईर्ष्या से जल उठे और उन साधनों को अपने अधिकार में ले लेने की अनधिकार भावना को वे दबा नहीं सके।

'देखो, हलकुमार, आज मैं तुमसे एक बात कहना चाहता हूँ—'ऊपर शान्त रहकर कुणिक ने समझाने के ढंग से कहना शुरू किया।

'वह क्या—भाई साहब ?'

'तुम्हारे हार और हाथी तो सचमुच ही विलक्षण हैं।'

'जी हाँ, वे तो हैं, किन्तु आप कहना क्या चाहते हैं?'

'हलकुमार, मैं यह कहना चाहता हूँ कि इनके तुम्हारे पास रहने से इनकी विलक्षणता का महत्त्व नहीं बढ़ता है।'

'इससे आपका मतलब—भाई साहब ?' मन-ही-मन चौंक पर हलकुमार ने पूछा।

'यही कि इन्हें तुम्हें सहर्ष राज्य को सौंप देना चाहिये ताकि ये सम्राट् के मनोरंजन के साधन बन सकें और उन

में शोभा पावें। वही इनका उपयुक्त स्थान हो सकता है।'

हलकुमार करीब-करीब चीख उठा—'ऐसा कैसे हो सकता है, भाई साहब, और क्यों होना चाहिये ? पिताजी से आपने तो पूरा राज्य पाया है। उन्होंने तो हार और हाथी मुझे स्नेह से दिये है। उनके स्नेह के प्रतीक को भी आप मुझसे छीन लेना चाहते हैं ! मैं साफ-साफ अर्ज कर दूं कि इन पर आपका कोई अधिकार नही, राज्य का कोई स्वत्व नही।'

कुणिक के चेहरे पर कुटिल हंसी फैल गई। जाते-जाते उसने व्यंगपूर्वक हलकुमार को कहा—

'अधिकार और अनधिकार की बात मैं नही समझता, हलकुमार, मैं सम्राट् हूँ, मेरी इच्छा ही अधिकार होती है। जो मैं चाहूंगा, वह होकर रहेगा—इस का ध्यान कभी न भूलना।'

'यह नही हो सकेगा—यह आपका अन्याय है। हार और हाथी मेरे हैं और मेरे ही रहेंगे।'

हलकुमार रोष मे कहता जा रहा था किन्तु ऐसा लग रहा था जैसे कुणिक ने उसे सुना ही नही।

× × ×

हलकुमार अपने कक्ष मे आकर भी शान्त न हो सका।

अपने विचारों की गुत्थियों को ज्यों-ज्यों वह सुलझाना चाहता वे और अधिक उलझ जातीं। वह सोच रहा था—

'कुणिक सम्राट् है उसके पास राज्यदंड है, सत्ता है, इसलिये सम्भवतः न्याय अन्याय का उसके लिये कोई प्रश्न नहीं है सत्ता में मनुष्य मतवाला हो जाता है न? उसके पीछे सेना की शक्ति होती है और शक्ति वाला न्याय अन्याय को क्यों देखे?

'किन्तु क्या मैं इस सारी शक्ति से भयभीत हो जाऊं? अन्याय को सह लूं और हार, हाथी राजा को सौंप दूं? पिता के प्यार के इन प्रतीकों को अपने हाथ से निकल जाने दूं?

'नहीं, नहीं ऐसा कैसे हो सकता है? अन्याय को सहने वाला अन्याय के करने वाले से भी अधिक निकृष्ट कहलाता है फिर मैं चुपचाप यह खून का घूंट कैसे पी सकता हूं?

'लेकिन ?'

लेकिन यह 'लेकिन' बीच में क्यों आ गया जिसने हलकुमार को गहरी चिन्ता मे डाल दिया। इस 'लेकिन' में आ गया सम्राट् कुणिक का चेहरा, उसका सन्यबल और उसका अन्याय करने का हठ। किन्तु यह 'लेकिन' फिर भी हलकुमार को हताश नहीं बना सका।

उसने अपने मन को दृढ बनाया और निश्चय किया कि अन्याय की सारी शक्तियो के विरुद्ध साहस और अडिग साहस पहली आवश्यकता होती है और जब ऐसा साहस होता है तो अन्य साधन स्वाभाविक रूप से आकर जुट जाते हैं ।

तभी हलकुमार को याद आया कि उसके नाना चेटक महाराज अठारह गणराज्यो के सयुक्त सघ के प्रधान हैं, जिनसे उस इस अन्याय के विरुद्ध ठोस सहायता प्राप्त हो सकती है । उसने हार पहिना और हाथी पर सवारी की कि तनिक-सी वेला मे वह अपने नानाजी के समक्ष पहुँच गया ।

चेटक ने हलकुमार से सारा वृत्त सुना तो उन्होंने निष्कर्ष यह निकाला कि इसका व्यक्तिगत महत्त्व कम और सार्वजनिक महत्त्व अधिक है । एक साम्राज्यवादी का अन्याय यदि प्रारभ मे ही असफल नही बना दिया जाता है तो वह अन्याय प्रचडतर होता जायेगा, जिससे स्वय गणराज्यो की स्थिति सकट मे पड जायेगी ।

उन्होने इस गभीर विषय पर अतिम निर्णय लेने की दृष्टि से अठारह गणराज्यो के सघ की गण-परिषद् की विशेष बैठक आहूत की ।

× × ×

गण-परिषद् की विशेष बैठक मे गभीरता का वाता-

वरण छाया हुआ था। सभी गण-सदस्य यथास्थान बैठ चुके थे, अब केवल गणपति चेटक के आगमन की प्रतीक्षा की जा रही थी।

तभी चेटक सादी वेशभूषा में सरलता के साथ प्रविष्ट हुए और सबका नम्रतापूर्वक अभिवादन करते हुए अपने स्थान पर विराज गये। उनके पास ही एक निम्न आसन पर हल कुमार भी बैठा हुआ था।

गणपति चेटक ने बैठक की कारवाई आरंभ करते हुए प्रारंभिक वक्तव्य दिया—

'गण-परिषद् के मान्य सदस्यगण, आप यह सब भली भाँति जानते हैं कि हमारे संघ के गठन का पहला उद्देश्य ही यह है कि प्रत्येक व्यक्ति के साथ न्याय का व्यवहार करना और करवाना। इसीलिये हमने राजतंत्र को समाप्त करके गणतंत्र की स्थापना की है . '

कुछ ठहर कर हलकुमार की तरफ संकेत करते हुए चेटक फिर बोले—

'यह आपके सामने एक अन्याय पीडित है। इस से सम्राट् कुणिक अन्यायपूर्वक इसके हार और हाथी छीन लेना चाहता है। हार और हाथी कुछ नहीं, प्रश्न है अन्याय को सह लेने या नहीं सहने का। न्याय के लिये यह गण की सहायता का प्रार्थी होकर आया है हमें इसे सहायता देनी

चाहिये या नहीं—यही आज की बैठक का प्रमुख विचारणीय विषय है।'

चेटक ने अपना कथन समाप्त कर सदस्यों से अपने विचार प्रकट करने का संकेत किया। सारी सभा का वातावरण गुरुतर गंभीर हो गया था—कुणिक के विशाल साम्राज्य के सामने गणराज्यों के अल्पतम साधनों से जा भिड़ना कैसा रहेगा? एक ओर अस्तित्त्व का भी खतरा था, परन्तु दूसरी ओर न्याय की रक्षा हेतु न जूझना उससे अधिक लज्जाजनक भी था। सदस्यों ने अपने विभिन्न विचारों को खुलकर प्रकट किया। इसके बाद सदस्यों की पारस्परिक मन्त्रणाएं भी हुई।

गण सचेतक ने तब परिषद् की सम्मति को स्पष्ट करते हुए बताना शुरू किया कि अन्याय को सहकर उसे प्रोत्साहित करने की अपेक्षा गणराज्य न्याय की रक्षा में अपने आपको मिटा देने में अधिक गौरव का अनुभव करेंगे।

तभी प्रहरी ने आकर निवेदन किया—

'गणपति महोदय, सम्राट् कुणिक का राजदूत आया है और इसी समय आपसे भेंट करना चाहता है।'

'उसे भीतर ले आओ—' गणपति ने आज्ञा दी। राजदूत ने परिषद् के सामने आकर सम्राट् कुणिक का एक पत्र प्रस्तुत किया, जिसे गण-सचेतक ने लेकर परिषद् को सुनाया। पत्र में आतंकपूर्ण भाषा में लिखा था कि हलकुमार

उनके राज्य का अपराधी है और उसके हार, हाथी राज्य के अधिकार की वस्तुएँ हैं, अत गणराज्य अगर अपनी सुरक्षा चाहते हैं तो हार, हाथी सहित हलकुमार को राजदूत को सौंप दें, अन्यथा युद्ध के लिये तैयार हो जायें जो उनके अस्तित्व तक को मिटा देगा।

पत्र सुनते ही सारे सदस्यों के चेहरो पर आक्रोश की तीखी रेखाएँ खिच गई ।

'सम्राट् कुणिक ने पत्र का उत्तर मेरे ही साथ मगवाया है—' राजदूत ने कहा ।

सारी परिषद् के मनोभावों को समझते हुए गणपति चेटक ने पूछा—

'इस युद्ध के न्यौते को स्वीकार किया जाये या अन्याय के सामने सिर झुका लिया जाये ? मैं इसके लिये सदस्यों से स्पष्ट निर्देश चाहता हूँ, ताकि इस दूत को निश्चित उत्तर दिया जा सके ।'

'युद्ध का न्यौता स्वीकार किया जाये—' सारे सदस्यों का एक स्वर गूंज उठा ।

सबकी सहमति से गणपति चेटक ने सम्राट् कुणिक के राजदूत को स्पष्ट भाषा म उत्तर दिया—

'दूत, अपने सम्राट् से कह देना कि हार–हाथी सहित हलकुमार को युद्धभूमि पर ही सौंपा जा सकेगा, अन्यथा

नहीं । उन्हें अपनी शक्ति पर अधिक घमंड हो तो गणराज्यों की तलवार की धार को भी वे देख लें । अन्याय से न्याय का मुकाबला होगा ही ।'

बैठक विसर्जित करने से पूर्व गण-सेनानायक को आदेश दिया गया कि सभी गणराज्यों की सेनाओं को पूर्णतया संगठित करके युद्ध के नगाड़े बजा दिये जाय ।

× × ×

साम्राज्य के विशाल सैन्यदल के विरोध में गणसेना ने जिस साहस से युद्ध किया, वह अपूर्व था । ग्रन्थों का कहना है कि एक लाख से भी अधिक जानें गईं, लेकिन न्याय ने अन्याय के समक्ष समर्पण नहीं किया । गणपति चेटक और उनके साथी दिन भर युद्ध में अद्भुत शौर्य दिखाते और सायंकाल हाथी के हौदे पर ही प्रतिक्रमण करके सबसे शुद्ध-हृदय से क्षमा याचना करते ।

कई दिनों तक युद्ध हुआ । खून की नदी बह चली, परन्तु गणराज्यों के न्याय ने साम्राज्यवादी अन्याय के सामने अपना गौरवपूर्ण मस्तक उन्नत ही बनाये रखा ।

किन्तु वर्तमान विचारणीय वस्तुस्थिति यह है कि गणराज्य में रहते हुए भी हम आज न्याय के लिये कैसा व्यवहार करते हैं ?

जी साठ से ऊपर चले गये हैं सो उनकी अक्ल भी सठिया गई है। कोई हीरे पन्ने दिये होते तो कुछ बात भी थी। दिये हैं चावल के पाच दाने—जैसे ये कोई बड़े अमोल हों और कहीं उपलब्ध न हों। चावल के ये पाच दाने कितने नगण्य हैं— जबकि अपने घर मे ही हर समय मना चावल संग्रहित किया हुआ रहता है।

बूढ़े ने बेअक्ली की बात की है तो क्या मैं भी उस बेअकली मे बह जाऊ और इन पांच दानों की कद्र करू ? बहूदी और बेतुकी बात है। जब भी वे मांगेंगे तो भंडार वस्तुभंडार से लाकर पाच दाने उन्हें वापस दे दूगी।

यह सोचकर उसने अवज्ञा पूर्वक चावल के उन पांचों दानों को अपने कक्ष के गवाक्ष से बाहर फेंक दिया।

× × ×

दूसरी पुत्रवधु ने विचारा कि ये पांच दाने श्वसुर जी ने मुझे दिये हैं तो यह एक तरह से उनका दिया हुआ प्रसाद है। इसका मुझे अनादर नही करना चाहिये। अतः पाचो दानो को उसने अपने मु ह में डाला और सम्मानपूर्वक उन्हें चबा गई।

अब रही इन दानो को श्वसुर जी को वापस सौंपने की बात सो अपने वस्तुभंडार म हर समय काफी चावल

पड़ा रहता है, उसी मे से पाच दाने लेकर लौटा दूंगी – यह उसने भी सोच लिया।

× × ×

तीसरी पुत्रवधु ने यह सोचा कि श्वसुर जी ने एक धरोहर मुझे सौंपी है—इस बात का विचार नही कि वह बड़ी है या छोटी, किन्तु धरोहर को शुद्ध एव सच्ची दृष्टि से धरोहर ही माननी चाहिये। चाहे चावल के पाच ही दाने हैं, किन्तु यह भी धरोहर ही हैं, इस कारण जब भी श्वसुर जी इन दानों को वापस मांगे तो मुझे सचाई से ये ही दाने उन्हें वापस लौटाने चाहिये। यदि मैं इन दानो को बदल देती हू तो वह समुचित नही होगा।

इस विचार से उस तीसरी पुत्रवधु ने उन पाचों दानों को एक रेशमी वस्त्र मे सावधानी पूवक बाधकर अपनी अलकार-मञ्जूषा मे उन्हें रख दिया ताकि जब भी श्वसुर जी उन दानों की माग करेंगे तो वह सचाई से वे ही दाने उन्हे लौटा सकेगी।

× × ×

चौथी और सबसे छोटी पुत्रवधु ने चावल के उन पाचों दानो को योग्य निर्देश के साथ अपने पीहर भिजवा दिया।

पाच वर्ष बाद जब धन्नासेठ ने अपनी चारों पुत्र-
वधुओं को फिर अपने पास बुलाया तो सबने यह अनुमान
लगाया कि श्वसुर जी अपने चावल के उन्हीं पांच दानों के
बारे में पूछेंगे। इसलिये सभी इस सम्बन्ध में अपनी-अपनी
बुद्धि से तदनुरूप व्यवस्था करके ही उनके पास पहुंचीं।

चारों पुत्रवधुएं जब उनके सामने आकर बैठ गईं तो
सेठजी ने क्रमानुसार ही सबसे पूछना आरंभ किया।

'हमारी सबसे बड़ी बेटी ने पांच वर्ष पूर्व दिये गये
चावल के पांच दानों का क्या किया है—यह मैं सबसे पहले
सुनना चाहूंगा।'

'क्षमा करें पिताजी, चावल के उन पांच दानों के
सम्बन्ध में मुझे कोई बुद्धिमत्ता का काम नहीं लगा, इसलिये
मैंने उन दानों को उसी समय बाहर फेंक दिया था। यदि
आपको चावल के पांच दाने ही चाहिये तो इन्हें ले लीजिये,
मैं अभी-अभी अपने वस्तुभंडार से लेकर आई हूं'—यह
कहकर पहली पुत्रवधु ने चावल के पांच दाने सेठजी के सामने
रख दिये।

जब सेठजी ने दूसरी बहू की ओर संकेत किया तो
उसने भी तुरंत वस्तुभंडार से लाये हुए चावल के पांच
दाने श्वसुर जी समक्ष धरते हुए आदरपूर्वक कहा—

'पिताजी, उन पांच दानों का मैं क्या करती? मैं

प्रसाद समझ मैं उन्हें उसी समय खा गई थी और अब ये पांच दाने वस्तुभंडार से ले आई हूँ।'

अपने श्वसुर का निर्देश होने पर तीसरी बहू ने अपनी अलंकार-मंजूषा खोली, उसमें से फिर छोटी मंजूषा निकाली और उसमें से फिर छोटी मंजूषा। इस तरह मंजूषा में से मंजूषा निकालते हुए उसने सातवीं मंजूषा में से एक छोटी सी पोटली निकाली तथा सावधानी से पोटली खोलकर उसमें से चावल के वे ही पांच दाने उसने निकाले और श्वसुर जी के चरणों के पास सावधानी पूर्वक रख दिये। फिर वह बोली—

'अपनी धरोहर को भली-भांति सम्हाल लें, पिताजी, मैंने अपनी ओर से इन दानों की रक्षा करने में तनिक भी असावधानी नहीं बरती है। आप विश्वास कीजियेगा—ये वे ही दाने हैं जो आपने पांच वर्ष पूर्व मुझे दिये थे।'

सेठजी विचारमग्न हो, उस बहू की ओर एक विश्वास की नजर से देखने लगे। तभी वे अपनी चौथी बहू की ओर मुड़े और पूछ बैठे—

'हमारी सबसे छोटी बेटी के पास तो कुछ भी नहीं दिखाई देता है। उसने उन पांच दानों का क्या किया है—इसे सुनने के लिए मैं उत्सुक हो रहा हूँ।'

हाथ जोड़कर नम्रता पूर्वक छोटी बहू ने कहा—

'आप सत्य ही कह रहे हैं, पिताजी कि इस समय

मेरे पास कुछ भी नही हैं। मैं इसीलिये उन दानो को नहीं लाई हूँ कि मैं उन्हें ला नही सकती थी।'

'क्या मतलब है तुम्हारे कहने का—मैं समझा नहीं–' सेठ आश्चय मे डूब गये।

'मैं उन दानो का बोझ उठाकर ला नही सकती थी।'

'तो पाच दानें भी तुम्हारे दिये इतन बोझ वाले हो गये ?'

'यही बात है, पिताजी—आप उन पांच दानो को मगाने के लिये कृपा करके कुछ बैलगाडियाँ मेरे पीहर भिजरा दें ताकि वे दाने लेकर बैलगाडियाँ बस तब यहाँ वापस आ जायेंगी।'

धन्नासेठ का आश्चय फिर भी नही मिटा और अन्य तीन बहुए तो मतिमूढ-सी बनी छोटी बहू के चेहरे को एक टक निहारने लगी।

'बेटी, बात को जरा समझा कर कहो—'

धन्नासेठ ने जसे उस बुद्धिशालिनी बहू के सामने अपने आपको बहुत छोटा मानते हुए प्रार्थना सी की।

'पिताजी, ससार चन्द्रमा को इसीलिये पूजता है कि वह अपनी कलाओ में बढ़ता रहता है। दूज के चांद को ही तो सभी देखते हैं। जो कुछ मिले, उसे अपने ज्ञान और परि

श्रम से अभिवृद्ध किया जाये—यही अपेक्षित होता है और वाछनीय भी—'

'बिल्कुल मेरे मन की बात कह रही हो पुत्री ! पाच वर्ष पूर्व दिये गये चावल के पाच दाने सादे दाने नही थे, तुम चारो की परीक्षा के दाने थे । तुमने इस परीक्षा मे क्या किया है—शीघ्रता से मुझे बताओ ।' और सेठजी सुनने को उतावले हो गये ।

'पिताजी, मैंने उन पाच दानो को इस निर्देश के साथ अपने पीहर भेज दिया था कि पहली फसल मे इन पाचो दानो को अलग बुवाया जाय, फिर उनसे जितना चावल पैदा हो उसे अलग रखा कर दूसरी फसल मे अलग खेत मे बुवाया जाय । हर फसल मे ऐसा ही किया जाय । इस निर्देश के अनुसार आज पाच वर्षों बाद चावल के वे पाच दाने पाच सौ मन चावल बन गये हैं । अब भला आप ही बताइये—इतने बोझ को क्या मैं स्वय उठाकर आपके पास ला सकती थी ?'

धन्नासेठ की आखे चमक उठी और उनमे अपार हर्ष के आसू झलक आये । छोटी बहू का साधुवाद करते हुए सेठजी ने चारो से कहा—

'अब स्थायी रूप से तुम्हारे कार्य विभाजन का निर्णय कल ही किया जायेगा, जब छोटी बहू के चावल के पाच दाने भी आ पहुँचेगे ।'

दूसरे दिन सेठ धन्ना ने अपनी सहधर्मिणी को भी पास म विठाया । चारो पुत्रो को भी बुला भेजा और चारों पुत्रवधूओं को भी । जब सब आकर यथास्थान बैठ गये तो सेठजी ने गभीर वाणी मे अपना कथन प्रारंभ किया—

'मेरे पुत्रो और पुत्रियो, हम दोनों अब इतने वृद्ध हो चले हैं कि हमारे जीवन का कोई ठिकाना नही । घर और घर की व्यवस्था को एसा सतत प्रवाहित निर्झर मानो, जिसमें जल तो बदलता रहता है किन्तु उसका प्रवाह नहीं टूटता। घर मे भी जीवन कालप्रवाह में आते-जाते रहते हैं, किन्तु सुव्यवस्था का एक प्रवाह तभी बना रह सकता है, जब उचित काम की जिम्मेदारी उचित व्यक्ति के हाथ मे हो . '

'मैंने पहले सबको बताया नही था—इस हेतु से मैंने ऐसी परीक्षा की एक योजना बनाई । पाच वष पूव मैंने अपनी प्रत्येक पुत्रवधू को चावल के पाच-पांच दाने दिये थे और कहा था कि जब भी मुझे याद आयेगा, मैं उन सबसे इन पांच दानो के बारे में पूछूंगा

'उसके अनुसार कल मैंने चारों से पूछा और इन चारों ने जो उत्तर दिये, उनकी रोशनी में मैंने इस घर का समुचित काय विभाजन करने का अन्तिम निणय ले लिया है और उसे सुनाने के लिये ही मैंने सारे परिवार को .. बुलाया है.. '

इतना कहकर थक जाने की वजह से सेठजी चुप हो गये और अपने पुत्रो की ओर देखने लगे ।

'पूज्य पिताजी, आपकी कुशाग्र बुद्धि एव श्रेष्ठ परख मे हम चारो का अमित विश्वास है । परीक्षा के बाद आप अपनी जिस बहू को जो काम सौंपेगे, उसे प्रत्येक स्थायी रूप से आगे इस घर मे करती रहेगी और घर की व्यवस्था को सुचारु बनाये रखेगी—इसके लिये आप आश्वस्त रहें ।'

चारों पुत्रो ने हाथ जोडकर अपने पिताजी से निवेदन किया ।

आत्म-विश्वास की हसी हसते हुए सेठजी ने एक-एक पुत्रवधू की ओर देखते हुए उसे उसका गृह-भार सम्हलाना शुरू कर दिया । सबसे पहले उन्होने सबसे बडी पुत्रवधू से कहा—

'बहू, तुमने जिस असावधानी, असम्मान और अशिष्टता का परिचय दिया उससे मैं मानता हूँ कि तुम कोई भी जिम्मेदारी का काम नही कर सकोगी । तुम सिर्फ हर पदार्थ को बाहर फेंकना जानती हो अत तुम्हारा काम रहेगा कि रोज तुम घर का कचरा, गन्दगी और अनुपयोगी पदाथ बाहर फेंकती रहो । इसलिये तुम्हारा नया नाम होगा—उज्झिता (फेंकने वाली) और अब से इसी नाम से तुम्हें पुकारा जायेगा ।'

वह उज्झिता लाज के मारे मरी जा रही थी कि वह

श्वसुर जी की परीक्षा-बुद्धि को नही समझी और उसी का बुद्धिहीनता सबके सामने प्रकट हुई है।

सेठजी ने दूसरी बहू की ओर मुड़कर कहा—

'तुम्हारे मे सम्मान है और खाने की रुचि भी, किन्तु बुद्धि नही है, इस कारण तुम घर के रसोईगृह का काम सम्हालोगी और तुम्हारा नया नाम होगा—योगवती ....'

'और तीसरी बहू, तुममे सम्हालने—रक्षा करने की बुद्धि तो है किन्तु अभिवृद्धि करने की बुद्धि का विस्तार नहीं है, अतः तुम घर के वस्तु भडार एव सम्पत्ति-कोष को सम्हालोगी और अब तुम्हें सब रक्षिता के नये नाम से पुकारेंगे।'

अब सब जान गये थे कि घर की पूरी चाबियाँ याने कि घर का पूरा नियन्त्रण चौथी और सबसे छोटी बहू के हाथों में सौंपा जायेगा। सेठजी ने अपने अमित स्नेह से छोटी बहू को पुकारा—

'बेटी, तुम्हारा नया नाम है रोहिणी—जो अभिवृद्धि का रहस्य जानती है। चावल के ये पाच दाने इसीलिये पांच सौ मन चावल में बदल सके। जिसे घर में निरन्तर वृद्धि की धुन रहती है, वही घर की व्यवस्था को सुचारु बनाये रख सकती है। वही सफल गृहिणी होती है।.. ...'

'पर यथास्थिति में रहे—यह भी शोभा की बात नहीं

है और जो घर को बरबादी की ओर ले जाये उसे तो गृहिणी कहना ही गलत है। निरन्तर अभिवृद्ध होते हुए गृह का व्यवस्था प्रवाह निर्झर की तरह सतत प्रवाहित होता हुआ रह सकता है।'

यह कहकर सेठजी ने अपने पुत्रो से पूछा—

'क्या मेरा कार्य-विभाजन तुम लोगो को न्यायपूर्ण लगा है ?'

'आपके चावल के पांच दानो ने कैसी खरी परीक्षा ली और आपने कैसा सुयोग्य न्याय किया—इसे देखकर हम तो आश्चर्यचकित रह गये हैं, पिताजी! इस घर मे आपका न्याय सदा जीवित रहेगा और आपकी पुत्रवधुओ को अपने जीवन को दायित्वपूर्ण बनाने की दिशा मे प्रेरित करता रहेगा—आप चिन्ता न करें।'

आठो प्राणियो ने चावल चढाकर अपने माता-पिता को प्रणाम किया।

अद्भुत परिवर्तन

'आप लोग कौन हैं और बिना आज्ञा इस उद्यान में क्यों घुस आये ?'—अर्जुन माली ने एक साथ छह पुरुषों को उद्दंड भावभंगिमा के साथ भीतर चले आते हुए देखकर जरा कठोरता से पूछा।

राजगृह नगर के बाह्य भाग में स्थित गुणशील नामक उद्यान में अर्जुन माली अपने बाल्यकाल से रहता आ रहा था तथा अपने पिता की मृत्यु के बाद से वही उद्यान का माली था। वह उद्यान में ही अपनी पत्नी बन्धुमती के साथ सन्तुष्ट एवं प्रसन्न जीवन व्यतीत कर रहा था। बन्धुमती लावण्यवती भी थी तो गुणभागी भी, जिसके साहचर्य में अर्जुन माली सारे संसार से अलग—इस उद्यान के एकांकी वातावरण में भी अतीव सुखी था।

गुणशील उद्यान के एक कोण में मुद्गरपाणि नामक एक यक्ष की मूर्ति स्थापित थी, जिसके एक हाथ में एक विशाल लोह-गदा धरी हुई थी। अर्जुन अपने बचपन से

इस यक्ष की उपासना करता चला आ रहा था और उसमें अपनी अटल श्रद्धा भी रखता था।

जिस समय उक्त छह पुरुषों ने उद्यान में अति उद्-डतापूर्वक प्रवेश किया, उस समय अर्जुन माली अपनी पत्नी बन्धुमती के साथ मालाएँ बनाने के लिये विविध पुष्पो का चयन कर रहा था। ये छह पुरुष अर्जुन माली की पूछताछ के बावजूद सीधे चलते हुए उसी के सामने आकर खड़े हो गये।

'क्यो रे माली, तूने हमसे यह प्रश्न किया है?'— एक उद्दड पुरुष ने अर्जुन को डाटते हुए जब उल्टा ही प्रश्न किया तो वह समझ नही सका कि ये कौन लोग हैं? फिर भी माली ने कहा—

'जी, मैंने आपसे ही पूछा है और यह राजा की आज्ञा है कि मुझसे अनुमति लिये बिना कोई भी उद्यान मे प्रवेश न करे, वह चाहे कोई भी हो—'

'मूर्ख, न राजा की आज्ञा हमे रोक सकती है और न तेरी अनुमति हमें रोक सकती है। हम स्वतन्त्र पुरुष हैं—हम छह जनो की 'ललित मडली' का क्या तुमने कभी नाम नही सुना है?'—उन्होंने पूछा।

अर्जुन माली ने सीधा-सा उत्तर दिया— 'मैं कभी

मुश्किल से ही नगर में जाता हूँ—मुझे आपकी इस 'ललित मडली' का कभी कोई परिचय नही हुआ है।'

'अरे वाह, 'ललित मडली' का तुम्हें परिचय नहीं। यह वह मडली है जो मनचाहा करती है, उसे किसी का भय नहीं है। तुम्हें हमे उद्यान मे आने से रोकने की हिम्मत कैसे हुई ?'

- इतने म मडली के एक सदस्य की दृष्टि कुछ दूर, फूल चुनती हुई बन्धुमती पर जा गिरी। उसके रूप को देख कर उस दुष्ट पुरुष के हृदय की क्रूर दुष्टता उभर आई। वह अपने साथी की बात को बीच में ही काटकर बोल उठा—

'इस माली को अपनी मडली का परिचय नहीं है। मित्रो क्यों नही इसे अपना असली परिचय अभी ही करा दिया जाये।'

और आँख के सकेत से उसने अपने पाचों साथियों को बन्धुमती की ओर देखने का इशारा किया। एक ही इशारे में सबने अपनी कुटिल योजना बना डाली। अर्जुन माली कुछ समझा नही।

मडली के एक सदस्य ने अर्जुन माली को शान्त करते हुए कहा—

'माली, हमारे कहे का बुरा मत मानना। तुम अगर नही ही मानते हो तो हम उद्यान से बाहर चले जाते हैं।'

और उसने अपने साथियो से कहा—'मित्रो, चलो हम बाहर चले चलते हैं—माली को व्यथ मे सताने से क्या लाभ है ?'

तब ललित मडली के वे उद्द ड सदस्य धीरे-धीरे उद्यान के बाहर निकल गये और घूमकर माली की आख बचाते हुए मुद्गरपाणि यक्ष के यक्षायतन के पिछवाडे मे छिपकर मौके की ताक मे बैठ गये ।

× × ×

अचानक आई हुई आपदा के मिट जाने से अजु न माली अनायास ही प्रसन्न हो उठा । पूजा का समय भी हो गया था, अत वह पुष्पहार तथा पूजा की सामग्री लेकर मुद्-गरपाणि यक्ष की मूर्ति के सामने जा पहुँचा । ब धुमती भी उसके साथ थी । पूजा का यह उसका नित्य का क्रम था, हाँ आज उद्दडो के उत्पात से बच जाने की खुशी अवश्य ही अधिक थी ।

अजु न ने यक्ष की विधिवत् पूजा की । तब मूर्ति के चरणों मे पुष्प अर्पित कर वह नीचे झुका । ब धुमती उसके पीछे हाथ जोडे खडी थी । तभी यकायक ललित मडली के उन छिपे हुए छह उद्द ड पुरुषो ने अजु̐न पर आक्रमण कर दिया । उसे नीचे ही दबोच कर उन लोगो ने रस्सियों से माली को बाघ दिया । वह अकेला था और वे छह थे ।

ब धुमती का तब हाथ पकडकर एक ने अजु̐न माली

को मजाक उड़ाते हुए व्यंग से कहा—

'मूर्ख माली, तू हमको उद्यान में प्रवेश करने से रोक रहा था, क्योंकि तुझे हमारा परिचय नहीं था। बोल, अब हमारा परिचय तुझे हुआ या नहीं ?'

'यह कोई सज्जनता नहीं है ?'—अर्जुन माली कठिन बन्धनों में तड़पकर चीख उठा।

'सज्जनता और ललित मंडली का कोई दूर का भी रिश्ता नहीं है। समझे, माली !'

तभी मंडली के दूसरे सदस्य ने बन्धुमती की कमर में हाथ डालते हुए क्रूर हंसी हंसते हुए कहा—

'मित्रो, ललित मंडली का थोड़ा बहुत परिचय इस मूर्ख माली को तो मिल चुका है। अब सभी मिलकर थोड़ा बहुत परिचय इसकी सुन्दर पत्नी को भी क्यों न दे दें ?' और फिर सभी मिलकर निर्लज्ज अट्टहास करने लगे।

बन्धुमती ने इन उद्दण्ड पुरुषों से अपना पिंड छुड़ाने का बहुतेरा यत्न किया, किन्तु उसका कितना बस चलता ? छहों पुरुषों की यह तो ऐसी कुख्यात मंडली थी जिस पर प्रशासन भी सफलतापूर्वक अपना अंकुश नहीं लगा सका था। वे निर्भय होकर पापाचार करते थे और जनता उनसे आतंकित थी।

बन्धनों में बंधा अकेला अर्जुन माली तड़पता रहा

श्रौर वे उद्दड बन्धुमती को बलात् पकडकर यक्षायतन मे ले गये ।

× × ×

'श्रो मुद्गरपाणि यक्ष, मैंने बाल्यकाल से तुम्हारी तन-मन से सेवा, पूजा श्रौर श्रर्चना की है । एक दिन भी कभी भूल नही की । क्या उसका यह फल दिखला रहे हो कि छह छह उद्दड पुरुष तुम्हारे ही श्रायतन मे मेरी पत्नी के साथ बलात्कार करने का रोमाचकारी दृश्य उपस्थित करें ? क्या उसका ही फल है कि मैं बन्धनो मे बधा हुश्रा हताश पडा हूँ ?

'क्या मैं तुम्हें निरी काष्ठ की प्रतिमा ही मानू या तुम सचमुच श्रास-पास रहने वाले यक्ष हो श्रौर श्रगर तुम सचमुच मे यहाँ कही रहते हो तथा मेरी श्रब तक की सेवा-पूजा का कुछ भी फल देना चाहते हो तो मुझे बदला लेने दो—इसी समय श्रौर तुरन्त '—श्राक्रोश की भयकर ज्वाला मे जलते हुए श्रर्जुन माली ने उस यक्ष का स्मरण किया ।

तभी श्रर्जुन माली ने कसमसाकर जो श्रगडाई ली तो उसके सारे बधन एक-एक करके टूट गये । उस के शरीर मे यक्ष की वायु प्रविष्ट हो गई । श्रब वह श्रर्जुन माली नहीं रहा, उसकी देह मे मुद्गरपाणि यक्ष की प्रतिच्छाया श्रा गई थी । (श्रर्जुन) मुद्गरपाणि यक्ष ने श्रपने पाणि मे वहाँ

परा हुआ लौह मुद्गर (गदा) थाम लिया।

अर्जुन माली वह लौह-मुद्गर घुमाता हुआ गुर यक्षायतन में पहुँचा एवं अतीव कर्कश व निदय अट्टहास के साथ उसने झुकमरत छहों पुरुषों का उस मुद्गर से व वध कर दिया और उसके बाद उसने अपनी पत्नी की भी हत्या कर दी।

× × ×

छह पुरुष और एक स्त्री की हत्या अर्जुन मा यक्ष प्रभाव के कारण उन्मत्त बन गया। अब वह उस लौ मुद्गर को घुमाता और भयंकर निनाद करता हुआ राज नगर के चारों ओर चक्कर काटने लगा।

उसका प्रतिदिन का क्रम बन गया कि वह किसी प्रकार नित्य छह पुरुषों और एक स्त्री की हत्या कर डालता रोज सात हत्याएँ उसके प्रतिशोध की उग्र उन्मत्तता होने लगी।

सारे नगर में आतंक छा गया। राजा ने नगर द्वार बन्द करवा दिये और घोषणा करवा दी कि कोई नागरिक नगर से बाहर न जाये। जहाँ तहाँ अर्जुन मा के भयावह रूप और उसके द्वारा की जाने वाली निमम हत्याओं की चर्चा ही सुनाई देती थी।

ऐसे ही समय में देश। प्रदेश मे विहार करते हुए अपने सन्त मडल के साथ नगर के बाहर गुणशील उद्यान मे भगवान् महावीर का पधारना हुआ। भगवान् महावीर के पवित्र दर्शन एक ओर, किन्तु दूसरी ओर अपने प्राणो का भय— राजगृह नगर के नागरिक असमजस मे पडे हुए थे कि क्या किया जाये ?

प्राणो का भय उसे ही रहता है जो आत्मा की अनश्वरता को ही नही पहिचानता। पशुबल से डरे—उसका अर्थ ही यह है कि उसने आत्मबल को सन्तुलित एव सुगठित नही किया है। एक आत्मबली बडी-से-बडी शक्ति के सामने भी निर्भय एव स्थिर रह सकता है, बल्कि सामने आई हुई पाशविक शक्ति को झुकाकर उसे परिवर्तित कर सकता है। राजगृही नगर का युवा श्रेष्ठिकुमार सुदर्शन ऐसा ही आत्मबली और आत्मसाधक था।

'पूज्य पिताजी, नगर के बाहर गुणशील उद्यान में पतितपावन भगवान् महावीर पधारे हैं, अत आपकी अनुमति चाहता हूँ कि उनके दर्शन कर मैं अपने आपको कृतकृत्य बनाऊ ?'—सुदर्शन ने अपने पिताजी से उस सकट के समय भी निर्भयतापूर्वक नगर के बाहर जाने की आज्ञा चाही।

'बेटा, तुम्हारी भावना की मैं सराहना करता हूँ लेकिन अर्जुन माली के भयकर उत्पात के समय मैं तुम्हे उस सकट

मानवीय आत्मबल के सामने यक्ष का दैत्य प्रभाव जब परास्त हो गया तो इसे अपना अपमान समझ यक्ष तुरन्त अर्जुन माली के पिंड से निकल वायु विलीन हो गया और अर्जुन माली धड़ाम से पृथ्वी तल पर गिर पड़ा। सुदर्शन ने ध्यानावस्था से हटकर उसे कपड़े से पखा करना प्रारम्भ किया और अर्जुन माली अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ गया। अपने सामने निर्भयता की मूर्ति को जब उसने देखा तो वह आस्था से द्रवित हो गया और सुदर्शन के चरणों में लोट गया और नेत्रों से झर झर आंसू बहाने लगा।

'अर्जुन, तुम क्या से क्या हो गये थे—इस की सज्ञा भी तुम्हें है ? कितने निर्दोष स्त्री पुरुषों के रक्त से तुम्हारे हाथ सने हुए हैं ? क्या तुम इस पाप से मुक्त होने और इन आंसुओं को सफल प्रायश्चित्त में बदल देने के लिये तैयार हो ?'—सुदर्शन ने माली को प्रतिबोधित किया।

'सुदर्शन महाशय, क्या मैं आपको पहिचानता नहीं हूं ? अब तक मैं, मैं कहां था, मैं तो यक्षाधीन हो रहा था। प्रतिशोध के जिस प्रचड आवेग में मैं यक्ष से जो माग बैठा, वह मुझे मिल गया, किन्तु उसके बाद तो यक्ष प्रभाव से ही मैं सब कुछ कर रहा था, मेरी अपनी सज्ञा से नहीं। इस समय तो परिवर्तन मेरे रोम रोम की पुकार है, आप मेरा अवश्य ही उद्धार कीजिये'—अर्जुन ने प्रायश्चित्त एवं

उत्थान-भावना से विगलित होकर सुदर्शन से अति अनुनय-विनय पूर्वक निवेदन किया ।

'मैं तो अकिंचन हूँ, अर्जुन, तुम्हारा उद्धार तो वीर-प्रभु ही करेंगे और वह तुम्हारा अद्भुत परिवर्तन होगा । मैं वीरप्रभु के दर्शनार्थ ही जा रहा हूँ, तुम भी मेरे साथ चल सकते हो ।'

सुदर्शन आगे और उनके पीछे जब अर्जुन माली गुण-शील उद्यान की ओर चलने लगे तो अपनी-अपनी छतो से देख रहे उत्सुक नागरिकों ने उच्च ध्वनि से जयनाद किया और वे भी महावीर के दर्शन हेतु निकल पड़े । यह जय-नाद सुदर्शन का नहीं, एसे आत्मबल का था, जिसने एक हत्यारे दिल को पलट दिया था ।

× × ×

'हे भगवन् ! मेरी आत्मा पापो के भार से दबी जा रही है । मैंने जाने-अनजाने कितने प्राणो का विनाश किया है, कितने प्राणों को अमित कष्ट पहुँचाया है—यह सब कुछ आपकी दृष्टि मे है, प्रभु । क्रोध से मैं कितना पागल बना, प्रतिशोध की आग में कितना जला—यह भी आप जानते है । जो हो गया उसके लिये प्रायश्चित्त करके मैं अपने जीवन को विशुद्ध बनाना चाहता हूँ, अन्तर्यामी, आप मुझे अपनी शरण मे लीजिये ।'

धमदेशना समाप्त होने के पश्चात् जब श्रोता वन्दन करके अपने-अपने स्थानों को लौट चले, तब भी अर्जुन माली वहीं खड़ा रहा और उसने भगवान् की सेवा में यह निवेदन किया ।

'अपने जीवन में अद्भुत परिवर्तन लाने का तुम्हारा अनुभाव जब प्रबल है तो जैसा तुम्हें सुखकर एवं रुचिकर हो, वैसा शीघ्र ही कर सकते हो, देवानुप्रिय !'

महावीर की आज्ञा पाकर अर्जुन ने मुनि व्रत ग्रहण किया तथा कठोर तपाराधन प्रारम्भ कर दिया ।

× × ×

पहले ही बेले के पारणे का दिन था। अर्जुन मुनि भिक्षा हेतु नगर में प्रविष्ट हुए । जितने पुरुष और स्त्रियों की घात उनके हाथों पहले हुई थी, उनके सम्बन्धियों एवं मित्रों ने जब पहली बार उन्हें देखा तो जो विवेकशील थे, वे तो इस परिवर्तन को समझ गये और शान्त रहे, किन्तु जो अभी तक क्रोध एवं प्रतिशोध की आग में जल रहे थे, उन्हें सामने देख अत्यन्त ही क्रोधित हो उठे ।

'अरे, इसने मेरी माता को मारा है.. यह तो मेरे पिता का हत्यारा है इसने मेरे पति का वध किया है इस दुष्ट के हाथों मेरा भाई मृत्यु को प्राप्त हुआ है इसे

मारो, पीटो और बदला लो ...'

एकत्रित जनसमूह मे से ऐसी अनेक आवाजें जोर-जोर से सुनाई दी और बदला चुकाने की रोषभावना से कई लोग आगे बढ आये। अर्जुन मुनि ने शान्त भाव से सोचा कि वे कितने सौभाग्यशाली है कि प्रायश्चित्त की घडी इतनी शीघ्र उनके सामने उपस्थित हो गई है। वे हर्षित होकर अपने जीवन को हल्का बनाने की दृष्टि से अविचल खडे हो गये।

किसी ने उन पर डडो से प्रहार किया, किसी ने पत्थर बरसाए तो कोई हाथो से ही अपना बदला चुकाने मे लग गया, किन्तु मुनि स्थिर खडे रहे। उनका समूचा रक्त बह गया, जैसे कि उनके समूचे पाप बह गये। एक हत्यारा महात्मा बन गया था—परिवर्तन की भावभरी प्रक्रिया मे ढल कर निखर गया था।

तभी भगवान् ने अपने शिष्यो को उद्बोध दिया—'अर्जुन मुनि ने कितना शीघ्र अपना उद्धार कर लिया? इसे कहते हैं—अद्भुत परिवतन।'

कठोर प्रायश्चित्त

'मेरा मन तो निर्णय ले चुका है, पिताजी और यह अन्तिम निर्णय है'—राजकुमार अरणिक ने अपने माता पिता के समक्ष नम्रता किन्तु दृढतापूर्वक कहा ।

'बेटा, आज तुमने निर्णय बना लिया है सो ठीक है, किन्तु अभी तुम्हारी उम्र कच्ची है, अभी तुम्हें दुनिया का कोई अनुभव नही मिला है, इसलिये अभी इस निर्णय को स्थगित रखो । कुछ वर्ष ससार मे और गुजारो और जब तुम्हारी उम्र और तुम्हारा मन दोनो अनुभव के साथ पक्के हो जायें तब इस निर्णय को कार्यान्वित करो—ऐसी मेरी सलाह है ।'

महाराज ने अपने पुत्र को समझाना चाहा कि वह दीक्षा लेने में उतावलापन न करे ।

'पिताजी, किसी गृह में आग आज लगी हो और उस गृहस्वामी को आप दो चार रोज ठहर कर आग बुझाने की सलाह दें तो क्या वह उचित होगी ? क्या ऐसी ही

सलाह आप मुझे नही दे रहे हैं ?'

'यह कैसे पुत्र ?'

'मेरी आत्मा आज विकृति मे धमती जा रही है तथा मैं कुछ वर्ष और समार मे रहू याने उसे और गहराई मे धसाता जाऊ व एक दिन ऐसी स्थिति मे पहुँच जाऊ कि पतन की उस गहराई से उसे बाहर निकाल पाना ही कठिन हो जाये– ठीक उसी तरह कि दो चार रोज आग बुझाने से रुकने पर वह गृह ही पूरे तौर पर भस्म हो जाये। अत आज के उत्साह को मैं शिथिल बना दू—ऐसी सलाह आप क्यों देते हैं ?'

अरणिक ने तार्किक रूप से महाराज का मुह बद कर दिया तो उसकी माता ने ममता के स्वर मे उससे कहा—

'बेटा अरणिक, तू नही जानता कि मा अपनी पुत्र-वधू और अपने पोतो का मुह देखने की कितनी गहरी उत्कठा रखती है ? क्या तू अपनी माँ की इस उत्कठा को पूरी नही करेगा ? अभी जीवन बहुत लम्बा है, समय आने पर दीक्षा भी लेना—हम तुझे रोकेंगे नही ।'

'क्या माताजी, आप अपने बेटे के आयुष्य की एक दिन की भी सुनिश्चितता मान सकती हैं ? एक पल का भी कही ठिकाना है ? माँ की दृष्टि का केन्द्र उसका बेटा जब महाभिनिष्क्रमण पर प्रस्थान कर रहा हो तो माँ के लिये

इससे बढ़कर कौन-सा सुख हो सकता है ? आपको तो मुझे उत्साह देना चाहिये ।'

महाराज और महारानी ने देख लिया कि किसी भी उपाय से राजकुमार अरगिरा अपने निश्चय से डिगने वाला नहीं है । तब उन्हें विचार आया कि जब उनकी इकलौती सन्तान ही राज्य और धन के सुख को छोड़कर त्याग पथ पर चली जाना चाहती है तो फिर उनके लिये ही ससार मे कौनसा आकर्षण बच रहता है । बेटा नितप्रति नये-नये कष्टो का वरण करे और मां बाप राजसुखो का उपभोग करते रहें—यह न स्वाभाविक है, न सह्य । उसके बावजूद भी अपने इकलौते पुत्र पर उनका अपार स्नेह था ।

'यदि तुमने अडिग निश्चय ही कर लिया है पुत्र, तो फिर हम ससार मे रहकर क्या करेंगे ? महारानी, बेटा मुनि बन रहा है तो फिर हम लोग भी मुनिव्रत साथ-साथ ही क्यों न ग्रहण कर लें ।'

महाराज के सुझाव का महारानी ने समर्थन करते हुए कहा—

'बेटा जमीन पर सोवे तो हम पलग पर सो ही कैसे सकेंगे ? बेटा रूखा-सूखा खावे तो क्या पक्वान्न हमारे लिये विषमय नही बन जायेंगे ? बेटे के शुभ्र सादे वस्त्रों को देखकर हमारे बहुमूल्य वस्त्रों को क्या लज्जा नहीं आयेगी ?

बेटा मुनि बनता है तो हमे पहले मुनि बनना ही चाहिये।'

× × ×

नगर मे चारों ओर आनन्द का सागर उमडा रहा था। नगर जन वियोग से खिन्न अवश्य थे कि राजकुमार अरणिक और उनके प्रजाप्रिय माता-पिता—तीनो एक साथ उनसे असम्बन्धित हो रहे हैं, किन्तु उन्हे अमित हर्ष इस तथ्य पर था कि त्याग के मार्ग पर तीनों का उत्साह कितना प्रगाढ, कितना अनुपम और कितना सराहनीय है ? राज्य के प्रचुर सुखों को ठोकर मारकर निकलने का निर्णय कर लेना कोई आसान निर्णय नही है। उनके प्रबल वैराग्य की ठौर-ठौर प्रशसा हो रही थी। राजकुमार अरणिक की भावना की सराहना करते हुए तो नगरजन अघा नही रहे थे।

प्रासाद के प्रागण मे सारे नागरिक एकत्रित होने लगे। ज्यो ज्यो सूर्य ऊपर उठता जा रहा था, नगरजन अपनी उमग मे भी ऊपर उठते जा रहे थे। जयनाद के साथ महाराज, महारानी और राजकुमार ने दीक्षा-स्थल के लिये प्रस्थान किया। वहाँ उन्होंने अपने गुरु के सान्निध्य मे विधिवत् दीक्षा ग्रहण की।

दीक्षा के पश्चात् नवदीक्षित महारानी तो अन्य साध्वियों के साथ अलग विहार करने लगी, किन्तु महाराज और अरणिक मुनि साथ-साथ ही विचरने लगे।

'मैं जरा भिक्षा लेने जा रहा हूँ, पिताजी महाराज।'

'नहीं, अरणिक मुनि, नहीं। मेरे होते हुए तुम्हें कोई कष्ट करने की जरूरत नहीं है। लाओ, पात्र मुझे दो मैं ले आता हूँ।'

पिता मुनि हो गये, फिर भी पुत्र पर से अपना पितृ-मोह दूर नहीं कर सके। साथ में रहने का बड़ा कारण यही था कि वे अपने पुत्र मुनि को कोई कठिन काम न करने दें और उसकी हर तरह से सार-सभाल रखें। अरणिक मुनि को वे न तो सर्दी-गर्मी में बाहर निकलने देते और न उन्हें वस्त्र-पात्रादि का तनिक भी भार उठाने देते। इस तरह अरणिक मुनि कष्टसहिष्णु नहीं बन सके। उनके शरीर की कोमलता कठोरता में बदल न सकी।

यकायक एक दिन अरणिक के पिताजी महाराज की तबियत बहुत ज्यादा खराब हो गई। तब अन्तिम अनशन व्रत ग्रहण करने से पूर्व उन्होंने अपने पुत्र मुनि को बुलाकर कहा—

'अरणिक मुनि, मैं अपने शरीर पर से भी मोह छोड़ रहा हूँ, किन्तु विवश हूँ कि तुम पर से मेरा मोह दूर नहीं हो पा रहा है। क्या करूं—मैंने तुम्हें अपने मन और नेत्रों से कभी दूर नहीं रखा ? तुम सयमनिष्ठ रहकर अपने जीवन का चरम विकास प्राप्त करो—यही मेरा अन्तिम आशी

वचन है ।'

उनकी आंखो से आसू की दो बूंदें निकल कर नीचे लुढक गई ।

× × ×

'अरणिक मुनि, यहाँ से एक कोस की दूरी पर ही नगर है, जरा जाकर गुरु महाराज के लिये निर्दोष भिक्षा तो ले आओ ।'—एक वरिष्ठ मुनि ने आदेश दिया ।

पिताजी महाराज के स्वर्गवास के पश्चात् यह पहला अवसर था, जब किसी ने अरणिक मुनि को किसी भी कार्य के लिये आदेश दिया हो तथा यह भी उनकी दीक्षा के बाद पहला ही अवसर था कि वे पात्रादि लेकर भिक्षा के लिये निकले हो ।

मुनिगण वन-प्रान्तर मे एक वृक्ष के नीचे ठहरे हुए थे । अपने नियम के अनुसार वे दिन मे एक ही बार तीसरे प्रहर मे आहार लिया करते थे, अत दोपहर मे मुनि अरणिक को सबसे कनिष्ठ होने के कारण भिक्षार्थ भेजा गया ।

ग्रीष्मऋतु का समय था । दोपहर मे सूर्य अपने प्रखर ताप से आग के जलते हुए गोले के समान प्रतीत हो रहा था । आकाश से जैसे आग बरस रही थी । पृथ्वी तपे हुए तवे के समान तीव्र उष्णता से दहक रही थी । इस भीषण

गर्मी के कारण चारों ओर न तो कोई मनुष्य था पशु दिखाई पड़ता था और न आसमान मे एक भी पक्षी।

मुनि अरणिक आग की तरह जलती हुई उस बालू पर अपना एक-एक नगा पैर क्या रखते थे कि दोनों पैरों पर नये-नये छाले उभरते जाते थे। एक तो वे पहले सुकोमल राजकुमार थे और दूसरे दीक्षा के उपरान्त भी अपने पिता की छत्रछाया म रहते हुए कभी कोई कष्ट उन्होंने देखा नहीं, उस पर पहला ही मौका ऐसी भीषण गरमी से सामना करने का मिला, वे व्यथित हो उठे।

वे चले आ रहे थे नगर की ओर—किन्तु वह प्रचड ताप उनके लिये अतीव असह्य हो उठा था। पैर गरमी और फफोलो की दुहरी मार से बुरी तरह जल रहे थे, सिर तप रहा था और सारा शरीर दहक रहा था—फिर भी पर-कटे पक्षी की भाँति तड़फते हुए वे चले जा रहे थे।

नगर म प्रवेश करते ही अरणिक मुनि को सामने ही एक विशाल अट्टालिका दिखाई दी। पृथ्वी पर बुरी तरह तड़पती हुई मछली को जैसे जलकुड दिखाई दिया। वे कुछ क्षण विश्राम के लिये उस अट्टालिका की छाया मे खड़े रह गये।

अट्टालिका की स्वामिनी वेश्या ऊपर के झरोखे में बैठी हुई खस-खस की गीली टाटियों से शीतलता और सुगध

का आनन्द ले रही थी । अचानक उसकी नजर नीचे ठहरे मुनि अरणिक पर जा गिरी—उसने देखा, आकर्षक और सुकोमल देहधारी एक सलौना नौजवान घबराया-सा साधु के वेश मे खडा है । जिसको जो देखना चाहिये, वह वही तो देखता है । भोगवती वेश्या साधु के शरीर को देखकर ही मोहित हो सकती थी, साधु के साधुत्व को देखने की दृष्टि तो उसके पास थी ही कहाँ ?

वह भव्य आकृति जैसे पहली ही नजर मे उस वेश्या के मन मे गहरे पैठ गई और उस सौन्दर्य मुग्धा ने पहले ही ख्याल मे उस पछी को फासने की पूरी योजना सोच ली ।

'आप इतने सुन्दर, इतने कोमल और इतनी धूप मे कहाँ भटक रहे हैं, भव्य !'

'मैं भटक नही रहा, भिक्षा के निमित्त आया हूँ, जरा तेज गर्मी से घबरा गया था ।'—मुनि अरणिक ने निर्दोष भाव से उत्तर दिया ।

'आप आहार प्राप्त कीजिये, शीतलता प्राप्त कीजिये—मेरे पर कृपा करके ऊपर तो चलिये ।'—उसने अभ्यर्थना की ।

मुनि उस अट्टालिका मे प्रविष्ट हुए । उस समय कौन जानता था और क्या मुनि स्वय भी जानते थे कि वे उस अट्टालिका मे जो प्रविष्ट हुए हैं, तो भीतर ही रह जायेंगे ? मन भी क्या है जो कभी एक ही स्थिति को हेय समझ कर

छोड़ देता है और फिर उसे ही ग्रहण करने के लिये लाला यित हो उठता है। मुनि के सामने पहला ही कठोर कष्ट आया उष्णता के रूप में और इसी उष्णता ने मुनि के शरीर को ही नहीं, उनके मन को भी बुरी तरह झकझोर दिया था।

अट्टालिका के ऊपरी प्रकोष्ठों में उस वेश्या के साथ साथ जब मुनि अरणिक पहुँचे तो ताप तप्त मुनि को वह शीतलता और सुगंध ऐसी भायी कि उनका मुरझाया हुआ मुखकमल प्रफुल्लता से विकसित हो उठा। तब उनके मुख पर उनका सौन्दर्य द्विगुणित ही नहीं, शतगुणित होकर कान्ति-युक्तता से चमकने लगा। उस खिलती हुई सुन्दरता से वह वेश्या अवश होती जा रही थी।

वेश्या ने दासी को भोजन लाने की आज्ञा दी तो संकेत समझ कर वह अत्यन्त शीतल व सुस्वादु भोजन रजत थाल में ही परोस लाई।

'मुझे तो आहार अपने काष्ठ-पात्र में ही बहरा दो—' मुनि ने आग्रह किया।

वेश्या चतुर और कुशल थी। मुनि की आकुल-व्याकुल अवस्था का लाभ उठाने का उसने निश्चय कर लिया। उसने यकायक अपनी चिकनी और गोरी बाहें मुनि के गले में ही डाल दी और उनकी आंखों में अपनी मादक आंखें डालते हुए विह्वल स्वर में कहना शुरू किया—

'अब इन काष्ठपात्रों को फेंक दीजिये, मेरे प्रिय, क्या मेरा यह बाहुपाश अब आपको फिर से बाहर जाने देगा ? आप इस आनन्दधाम को छोड़कर अब वापस न लौटिये—' और उसने अपने लुभावने हाव भावो, तीखे कटाक्षो एव मादक मनुहारो से मुनि को वही रोक लिया। तब रजत थाल सामने रखकर उसने अरणिक को भोजन कराया और त्यागी से पुन भोगी बना लिया।

× × ×

नारी ने अरणिक के जीवन मे कभी प्रवेश नही किया था और जब उसने प्रवेश किया तो एकदम इतनी गहराई से कि अरणिक सब कुछ भूल गये। वे अपने सयम और आत्मोत्थान को भूल गये, अपने पिता के अन्तिम आशीर्वचन को भूल गये और भूल गये अपनी जीवित साध्वी माँ की अनुभूति को।

'क्या सोच रहे हैं आप, मेरे प्रिय।'

'कुछ भी तो नही प्रिये—मैं तुम्हारे सिवाय सोचता ही क्या हूँ ?'

'कितनी सौभाग्यशालिनी हूँ जो आप मेरे ही लिये सोचते हैं!'—वेश्या जैसे निहाल थी।

'और मेरा सौभाग्य तो तुम्हारी ही अक में समा गया

है, मेरी अंकशायिनी !'

अरणिक वास्तव में सारे ससार से कट कर वेश्या की अंक मे ही समा गये थे। कहाँ तो उनकी विरागी भावना इतनी उग्र हुई कि माता पिता के ममता भरे वचन भी उन्हें ससार मे न रोक सके और कहाँ सूय के घोर आतप मे वे ससार की गोद मे ऐसे समा गये कि जैसे वे मुनि तो कभी थे ही नही ?

त्याग के माग पर भी भोग वह फिसलना होती है कि जो जरा सा भी पैर थाम कर चलने से चूका कि फिसल कर नीचे और नीचे गिरता ही चला जाता है। जरा-सी चूक ने अरणिक को भी भोगलिप्त बना दिया था।

'आप कभी मुझे वियोगिनी बनाकर तो चले नही जायेंगे, अरणिक ?'

'अब मैं कहाँ जाऊगा, मेरी प्रिये ? तुम्हारे सिवाय इस ससार मे मुझे ठौर देने वाला ही अन्य कौन है ?'— अरणिक ने अपना विवश प्रेम प्रकट किया।

और फिर दोनो एक दूसरे मे खो गये।

× × ×

'मेरे अरणिक का इन दिनों कोई सवाद नहीं मिला है, साध्वीजी—' अरणिक की माताजी महाराज न विहार

कर नई आई हुई साध्वियो से पूछताछ की ।

'तो क्या आपने कुछ सुना ही नही ?'

'नही तो—'

'पिताजी महाराज के देवलोक होने के बाद पहली ही बार गर्मी के कष्ट से घबरा कर सुना है कि अरणिक मुनि किसी नगर मे एक वेश्या के सहगामी बन चुके हैं ।'

'क्या कह रही हैं आप ? मेरा अरणिक ऐसा कभी नही कर सकता । आपने झूठ सुना है ।'

'साध्वीजी, हमने सुना ही है, देखा नही । कौन जाने, झूठ ही हो सकता है !'

किन्तु 'अरणिक मुनि-धर्म छोडकर भ्रष्ट हो गया !'—इस कथनमात्र ने ही माताजी महाराज के मस्तिष्क र ऐसा तीव्र आघात पहुँचाया कि वे अपनी सुध-बुध ही खो ठी । माता के हृदय पर ममता की ठेस बहुत घातक होती है ।' ो पागल-सी हो गई । उसी क्षण से—

बेटा अरणिक, बेटा अरणिक—यह तुमने क्या किया ? यह तुमने क्या किया ? चिल्लाती हुई गली-गली, गाव-गाव वे भटकने लगी ।

साध्वियो ने उन्हें समझाया, नागरिको ने उनके बेटे को ढूढ निकालने का वादा किया, लेकिन मन की पखुडी

उखड़ चुकी सो उखड़ी ही रही। वे अपनी साथ की साथियों को भी छोड़कर अकेली ही इधर-उधर नगर-वन में चक्कर लगाने लगी। जहाँ जाती वहाँ पगली समझ कर नगर के बालक उनके पीछे हो जाते और तालियाँ पीटते रहते। उनके मुह से तो इस एक बोल के सिवाय कुछ और फूटता ही नहीं था। एक ही रट थी—

'बेटा अरणिक, बेटा अरणिक !'

× × ×

फिर ग्रीष्म ऋतु आ गई थी। अट्टालिका के उसी झरोखे में अब एकाकी वेश्या नहीं—वेश्या और अरणिक दोनों चौपड़ खेलते हुए खस-खस की गीली टाटियों की शीतलता और सुगन्ध का आनन्द ले रहे थे। सूर्य के घोर आतप से तपते हुए आकाश और तपती हुई धरती की ओर एक सरसरी सी नजर डालते हुए अरणिक बोले। जैसे वे किसी और से नहीं, स्वयं से ही कुछ कह रहे हों—

'पूरा एक वर्ष होने आ गया। यही सूर्य तप रहा था, यही धरती जल रही थी, यही आसमान धू धू कर रहा था और मैं घबरा गया था। मन की दुर्बलता ने मुझे ऐसी पटक दी कि मैं सबकुछ भूल गया। अरे मैं तो राजकुमार था अट्टालिका से भी बढ़कर प्रासाद की प्रचुर सुख-

सुविधाएं प्रस्तुत थी मेरे सामने किन्तु उत्साह से उन्हें ठोकर मारकर मैं निकला था मैं क्या निकला था, मेरे कारण ही तो मेरे माता-पिता भी निकल गये थे पिता चले गये, माँ न जाने कहाँ है और मैं अभागा पतित होकर यहाँ पडा हुआ हूँ कैसी विडम्बना है ?'

'यह क्या हो गया है, मेरे प्रिय, आपको ? आज आपका मन ठीक नही लगता, कुछ विश्राम कर लीजिये। कही मेरे से कोई त्रुटि तो नही हो गई है ?' और दौडी दौडी वेश्या शीतल पेय ले आई और अपने अरणिक को लगनपूर्वक पखा झलने लगी।

आशका से वेश्या का मन डोल उठा। इसी कडी धूप ने अरणिक का मुझसे मिलन कराया था और यही कडी धूप कही उनके विछोह का कारण न बन जाये। चौपड खेलते-खेलते उन्हें ऐसे विचार क्यों उठ आये ? वह मन-ही-मन जितना ज्यादा घबराती, पखा उतनी ज्यादा तेजी से वह झलने लगती।

तभी चीखते चिल्लाते ये करुण शब्द चारो ओर गर्मी के उस सूनेपन मे तीक्ष्णता से गूज उठे—

'बेटा अरणिक, बेटा अरणिक !'

अरणिक के कानों पर भी ये शब्द आये—एक बार, दो बार, तीन बार, किन्तु इन शब्दो का प्रवाह तो जसे

लिये अब कैसी गर्मी ? वे तो उस उष्णता से अतीत हो चुके थे।

मन की माया कैसी होती है कि जब मन दुर्बल हुआ था तो वही धूप असह्य हो गई, लेकिन जब वही मन सुदृढ़ बन गया तो वही धूप जैसे अपना अस्तित्व ही खो बैठी। मुनि अरणिक कठोर संकल्प और उग्र व्रत धारण करके पर्वत पर ऊपर और ऊपर चढ़ते ही जा रहे थे। उनके मुख पर तब विकलता या विक्षोभ की एक हलकी रेखा तक नहीं थी।

पर्वत के ऊपर एक तापतप्त शिलाखण्ड पर मुनि अरणिक ने अपना आसन जमाया और सभी के व्यामोहों से सर्वथा मुक्त होकर ध्यानस्थ हो गये। अरणिक उस समय सिवाय अपनी अन्तरात्मा के और कहीं जैसे विद्यमान ही नहीं रहे थे। एकाग्रता से रमण करते हुए व अन्दर ही अन्दर उन ऊँचाइयों को पार करते हुए अपने लक्ष्य की ओर आगे और आगे बढ़े ही जा रहे थे।

जैसे तपाते-तपाते सोना एक स्तर पर पहुँचकर कुन्दन बन जाता है, उसी तरह कठोर प्रायश्चित्त में अपने आपको तपाते-तपाते मुनि अरणिक भी निर्मल और प्रदीप्त कुन्दन बन गये।